बौद्ध-चर्या पद्धति

भदन्त बोधानन्द

बौद्ध - चर्य्या - पद्धति

लेखक

भदन्त बोधानन्द महास्थविर

बुद्धाब्द २५००
विक्रमाब्द २०१३
खृष्टाब्द १९५६

ीय बार
०००

मूल्य
१।।।)

प्रकाशक—

भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द

बुद्ध-विहार, रिसालदार पार्क,

लखनऊ

मुद्रक—

पं० शिवशंकर भार्ग

फाईन प्रेस,

हीवेट रोड, लखन

समर्पण

अपने प्रान्त के वयोवृद्ध नेता,
युक्त प्रान्तीय असेम्बली के अध्यक्ष,
तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य
की सर्वांगीण उन्नति के
सच्चे हितैषी
श्रीयुत पुरुषोत्तम दास जी टंडन
के कर कमलों में सादर
समर्पित।

विषय - सूची

प्रकाशकीय

बौद्ध तत्वों के प्रसार के साथ बौद्धों की नित्य-नैमितियक-चर्या सम्बन्धी ज्ञानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा भी हिन्दी भाषा-भाषी जनता में बढ़ती जा रही है। इसी का ध्यान रख तत्त्वदर्शी स्वर्गीय पूज्य महास्थविर बोधानन्द ने प्रस्तुत पुस्तक को तैयार किया था। प्रथम बार यह आज से ८ वर्ष पूर्व छपी थी। कुछ ही समय में सारी प्रतियाँ समाप्त हो गईं। "भगवान् गौतम बुद्ध" की भाँति "बौद्ध चर्या-पद्धति" भी महास्थविर जी के ही द्वारा तैयार होकर समाज की बढ़ती हुई एक आवश्यक तत्त्व की पूर्ति हुई थी। बौद्धों की चर्या-विधि अथवा गृह-विनय का इसमें पूरा विधान है। प्रथम संस्करण से भिन्नता के लिये केवल जीवन परिच्छेद ही जुड़ा है।

२५०० वीं जयन्ती पर्व के अवसर पर इसे पुनः मुद्रण कराया गया है। काशः पूज्य महास्थविरपाद अपने स्वप्नों को साकार हुआ देखने के लिये आज जीवित होते! क्षणस्थाई इस संसार में क्या हमें ऐसी कामना करने का अधिकार है?

महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रिय वलिसिंह ने बिना कहे प्रस्तुत संस्करण के मुद्रणभार को अपने ऊपर लेकर अपने स्नेह का परिचय दिया। एतदर्थ हम उनके चिर ऋणि रहेंगे। उपासिका श्रीमती गायत्री सेनाधीर और श्री रघुनाथप्रसाद राजपार्शिव बी० ए० तथा श्री भूलनप्रसाद जी से प्रूफ संशोधन में सहायता मिली। इसके लिये इनका हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

अनेक परिश्रम करने पर भी यत्र-तत्र जो भूल और अशुद्धियाँ रह गई हैं, उसके जिम्मेदार प्रकाशक ही है।

८ मई १९५६
बुद्ध विहार, लखनऊ

भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द

प्रस्तावना

यह पुस्तक कुछ प्रेमी सज्जनों के अनुरोध से—विशेष रूप से साहु मन्नूमल चौधरी के आग्रह से—कई वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी परन्तु कागज के न मिलने, प्रेस और प्रकाशन संबंधी प्रतिबन्धों तथा धनाभाव इत्यादि कठिनाइयों के कारण पुस्तक प्रकाशित न हो सकी; जिसकी मुझे बहुत ही चिन्ता रही क्योंकि एक तो मैं वृद्ध हो गया हूँ, दूसरे कुछ वर्षों से स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। इससे मैं निराश-सा हो गया और सोचा कि यह पुस्तक मेरे जीवन में शायद न छप सकेगी किन्तु महाबोधि सभा के परम उदार, बाल ब्रह्मचारी एवं कर्मवीर मंत्री भिक्षु एम० संघरत्न जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन व्यय की समस्त जिम्मेदारी लेकर मेरी चिन्ता और निराशा को दूर कर दिया। मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। त्रिरत्नानुभाव से वे निरूज और दीर्घजीवी हों; जिससे उनके द्वारा पुण्यमय कार्य सम्पादित होते रहें, यही मेरी आन्तरिक कामना है।

इस पुस्तक की पांडुलिपि लिखने एवं उसे दोहराने में अपने परम प्रिय भिक्षु शान्ति जी शास्त्री और अपने शिष्य श्रामणेर प्रज्ञानन्द तथा पं० चंद्रिकाप्रसादजी जिज्ञासु एवं बाबू भूलनप्रसाद जी की सेवाओं के प्रति हम कृतज्ञ हैं। पं० लालबहादुर जी शास्त्री, वाई० सी० शकरानन्द जी शास्त्री बाबू छेदीलाल वर्मा की सहानुभूति के लिए हम कम कृतज्ञ नहीं है।

जिन लेखकों की पुस्तक-पुस्तिकाओं से इसके लिखने में मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में भारतीय बौद्ध विद्वान् स्थविर आनन्द कौसल्यायनजी एवं त्रिपिटकाचार्य स्थविर जगदीश काश्यप जी की सद्भावनाओं के लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ।

सावधानी और सतर्कता रखने पर भी कुछ प्रूफ की भूलें रह गई हैं; जिनके लिए पुस्तक के अन्त में एक शुद्धि-पत्र लगा दिया गया है। पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

बुद्ध धर्म के उपासकों को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल शौचादि से छुट्टी पाकर किसी निकट के बौद्ध विहार (मन्दिर) या अपने घर में अथवा बाहर किसी उपयुक्त एकान्त स्थान में बैठकर अपने और जगत् के कल्याण के लिए इस पुस्तक में लिखे हुए पूजा-मन्त्रों को ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए भगवान् बुद्ध की पुष्प-धूप आदि से पूजन करें।

इसके बाद त्रिशरण सहित पंचशील मंत्रों का पाठ करना चाहिए, फिर त्रिरत्न बंदना और अष्टविंशति बुद्ध वंदना का पाठ करना चाहिए और अन्त में अपने तथा सबके हित के लिए ब्रह्म-विहार-भावना के मंत्रों का पाठ करना चाहिए। यह स्मरण रहे कि इन सब मंत्रों का पाठ करते समय इनके अर्थों का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि कोई बौद्ध भिक्षु (मुनि) मिले तो यह सब पाठ उनके मुख से सुनना चाहिए। आचार्य के आवृत्ति करते समय सब मंत्र वैसे ही रहेंगे परन्तु पंचशील के पाठ में परिवर्तन हो जायगा अतएव आचार्य द्वारा पंचशील ग्रहण करने के प्रकार भी दे दिये गये हैं।

भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध सब देवताओं और मनुष्यों के परम पूजनीय हैं। उनकी पूजा और वंदना निर्वाण पथ में सहायक होती है। बुद्ध, धर्म और संघ ये तीनों त्रिरत्न कहलाते हैं। संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये उनकी पूजा वंदना करना सबका परम धर्म है। बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा-वंदना के समय उनके पुनीत गुणों का स्मरण करने से वे सद्गुण अपने में विकसित होते हैं। बुद्ध के साक्षात्कार न होने पर बुद्ध चैत्य की वंदना करनी चाहिए।

बुद्ध चैत्य तीन प्रकार के हैं:—

(१) धातु चैत्य—भगवान् बुद्ध के मृतक-संस्कार के बाद उनकी अस्थियों का संचय करके उन पर जो समाधि-स्तूप बनवाये गये, उनको धातु चैत्य कहते हैं।

(२) पारिभोगिक चैत्य—भगवान् बुद्ध की व्यवहार की हुई वस्तुओं के ऊपर बने हुए समाधि-स्तूपों को पारिभोगिक चैत्य कहते हैं।

(३) उद्देशिक चैत्य—भगवान् बुद्ध की धातु पाषाण, आदि से बनी हुई प्रतिमाओं या समाधि-स्तूप की प्रतिमाओं को उद्देशिक चैत्य कहते हैं।

धर्म-पूजा, बुद्ध-पूजा और संघ-पूजा के अन्तर्गत है तथा श्रद्धा-पूर्वक धर्म का पालन करना भी धर्म-पूजा करना है।

बौद्ध धर्म में शील, समाधि और प्रज्ञा के सम्यक् अनुशीलन से ही मनुष्य का परम कल्याण होता है तथा शील की शिक्षा से धर्म का क ख ग शुरू होता है। बौद्ध धर्म का अनुयायी जो भी हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह त्रिशरण ग्रहण करे अर्थात् बुद्ध, धर्म और संघ में उसे पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास हो। डगमग श्रद्धा वाले जो ज़रा-ज़रा-सी कठिनाइयों में त्रिशरण को भूलकर इधर-उधर भटकने लगते हैं, उनको लक्ष्य करके भगवान् ने कहा है—

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च,
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरण मुत्तमं,
नेतं सरणमागम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति।

धम्मपद १४।१०,११

बहुत से मनुष्य भय से घबराकर पर्वत, वन, बाग-बगीचे वृक्ष और चैत्य की शरण जाते हैं, पर यह शरण जाना कल्याण कर नहीं है। यह उत्तम शरण नहीं है। इनकी शरण जाने से सब दुःखों से छुटकारा नहीं होता।

बौद्ध धर्म के अनुयायी के लिए जहाँ यह आवश्यक है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाय, वहाँ उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह अंधविश्वास से मुक्त हो, उसे अपने आप पर भी विश्वास हो। त्रिशरण से मनुष्य के अविकसित दिव्य गुणों को पूर्ण विकसित करने में सहायता मिलती है। बुद्ध शास्ता हैं, शिक्षक हैं। धर्म और संघ उन्हीं का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुद्ध प्रलोभन-वाक्य कहकर किसी को अपनी शरण नहीं बुलाते, जैसा कि गीता में लिखा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

गीता १८।६६

हे अर्जुन! सब धर्मों को त्याग करके एक मेरी ही शरण ले। मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूँगा। शोक मत कर।

प्रत्युत भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में आनन्द को सम्बोधित करते हुए कहा है—

"आनन्द! अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा"

—महापरिनिब्बान सुत्तं २ भाणवरं

हे आनन्द! तुम अपना प्रदीप आप बनो अपनी शरण जाओ।

"तुम्हे हि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता"

धम्मपदं २०।४

काम तो तुम्हें ही करना है, तथागत तो सिर्फ राह बताने वाले हैं। बुद्ध के कथन का सार निम्नोक्त गाथा से प्रकट है—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
स-चित्त परियोदपन, एतं बुद्धान सासनं॥

धम्मपदं १४।५

किसी प्रकार के पापों का न करना पुण्यकर्मों का संपादन करना और अपने चित्त को परिशुद्ध रखना, यही बुद्धों का आदेश है।

—•—

हिन्दी भाषा-भाषी बौद्ध उपासकों (सद्गृहस्थों) के धार्मिक सामाजिक और पारिवारिक नित्य नैमित्तिक कृत्यों को बताने के लिये राष्ट्र-भाषा हिन्दी में कोई पुस्तक न थी यह बात हमें बहुत दिनों से खटक रही थी। इस अभाव को दूर करने के लिये यह "बौद्ध-चर्य्या-पद्धति" नामक पुस्तक लिखी गई। इसमें प्रस्तावना और मङ्गलाचरण के अतिरिक्त पूजा, शील, वंदना, भावना, परित्राण, विवाहादिक संस्कार, शिष्टाचार, पर्व और त्योहार, तीर्थ और स्मारक, दान, उपदेश और तत्वज्ञान नाम से बारह परिच्छेद तथा अन्त में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ बताने के लिये गूढ़ार्थ बोधनी और शुद्ध-पत्र, एवं लेखक का परिचयात्मक निवेदन भी दे दिया गया है। परिच्छेदों का परिचय इस प्रकार है:—

पूजा—से अभिप्राय है सत्कार या आदर। माता, पिता, आचार्य आदि पूज्य व्यक्ति हैं। बुद्ध और उनके श्रावक सब पूजनीयों में श्रेष्ठ हैं। यद्यपि सत्कार या आदर मानसिक भाव हैं पर उनका हमारी सभी कायिक और वाचिक क्रियाओं से सम्बन्ध है। पूजा के समय पुष्प आदि का अर्पण हमारे मन में विद्यमान सत्कार का द्योतक है। पूजनीय पात्रों के भेद से यह पूजा तीन प्रकार की होती है। यदि पूजनीय व्यक्ति अकेला है और हमारे समक्ष है, तो यह पूजा पुद्गल-पूजा या व्यक्ति विशेष की पूजा कहलाती है। यदि पूजनीय एक व्यक्ति न होकर संघ है तो वह संघ-पूजा कहलाती है। यदि पूजनीय विद्यमान नहीं है, वह अतीत हो चुका है, तो ऐसी पूजा उद्देश्य-पूजा कहलाती है। पूजनीयों में बुद्ध और उनके शिष्यों की पूजा का महाफल होता है। आज भगवान् का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है, पर भगवान् के शिष्य हमारे बीच हैं और उनसे हमें धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है, इसलिए वे हमारे लिए पूज्य हैं। कहा गया है:—

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे॥

ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तमिति केनचि ॥

धम्मपदं १४।१७-१८

संसार के प्रपंच से जो छूट गए हैं, जो शोक भयादि उपद्रव को पार कर चुके हैं, उन पूजनीय बुद्ध और उनके शिष्यों तथा वैसे ही मुक्त और निर्भय पुरुषों की पूजा से जो पुण्य होता है, उसके परिणाम को यह कहकर नहीं बतलाया जा सकता कि यह "इतना" है।

पूजनीयों की पूजा परम मंगलदायक होती है। भगवान् ने कहा है:—

"पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं" (मंगलसुत्त)

यह पूजा ही परम यज्ञ है जिसमें न तो आग जलानी पड़ती है, न बलिदान करना पड़ता है, न आज्य (घी) और हवि (साकल्य) को स्वाहा करना पड़ता है। इस पूजा यज्ञ का गुणानुवाद करते भगवान् ने कहा है:—

मासे मासे सहस्सन यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावित्ततानं मुहूत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥

धम्मपदं ८।७

महात्माओं की मुहूर्त भर की पूजा सौ वर्ष तक किए जाने वाले उस यज्ञ से श्रेष्ठ है जो प्रतिमास हज़ार हज़ार दक्षिणा देकर किया जाता है।

यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥

धम्मपदं ८।८

महात्माओं की मुहूर्त भर की हुई पूजा सौ वर्ष तक की गई अग्निचर्या तथा सौ वर्ष तक किए गये हवन से श्रेष्ठ होती है।

यज्ञ आदि के निमित्त भौतिक सामग्री जुटानी पड़ती है और उत्तमोत्तम पुष्टिकर खाद्य सामग्री अग्नि में जलाई जाती है, जिसमें एक प्रकार से अनर्थ और हिंसा ही होती है। परन्तु पूजा-यज्ञ के लिए यदि मनमें श्रद्धा है, अध्यात्म-समर्पण का भाव है तो पर्याप्त है!

शील—बौद्ध त्रिशरण के अटल विश्वासी का शील ही मूलधन तथा शील ही मूल संबल है। शील का अर्थ सदाचार से है। बौद्ध सदाचार में आडबंर को बिल्कुल स्थान नहीं है। भगवान् ने कहा है:--

न नग्गचरिया न जटा न पंका,
नाना सका थंडिल सायिका वा।
रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं,
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्ण कङ्खं॥
धम्मपदं १०।१३

जिसमें आकाङ्क्षाएं बनी हुई हैं वह चाहे नंगा रहे, चाहे जटा बढ़ाए, चाहे कीचड़ लपेटे, चाहे उपवास करे, चाहे ज़मीन पर सोये, चाहे धूल लपेटे और चाहे उकंड्डू बैठे, पर उसकी शुद्धि नहीं होती।

असली शुद्धि तो शील पालन से ही होती है। विसुद्धिमग्ग में कहा है:—

न गंगा यमुना चापि सरभू वा सरस्वती।
निन्नगा वाचिरवती मही चापि महानदी॥
सक्कुणन्ति विसोधेतुं तं मलं इध पाणिनं।
विसोधयति सत्तानं यं वे सीलजलं मलं॥

प्राणियों के जिस मल का शील-रूपी जल धो डालता है, उसे

गंगा, यमुना, सरजू, सरस्वती, अचिरवती, मही एवं महानदी नहीं धो पातीं।

जैसे साफ़ कपड़े पर रङ्ग अच्छी तरह चढ़ता है, वैसे ही साफ़ मन में धर्म के ग्रहण करने की शक्ति खूब हुआ करती है। शीलाचरण से मनुष्य का मन इतना योग्य हो जाता है कि उस पर संसार की बुराइयों का असर नहीं होता। स्वयं उसमें चरित्रगत दुर्बलताएँ नहीं होतीं और इसी से उसमें एक प्रकार की निर्भयता और शान्ति आ जाती है, जो दम्भी और धर्मध्वजियों में नहीं होती। शील के महात्म्य को बताते हुए कहा है:—

> अत्तानुवादादि भयं विद्धंसयति सब्बसो।
> जनेति कित्तिहासञ्च सीलं सील वतं सदा॥
> गुणानं मूलभूतस्स दोसानं बलघातिनो।
> इति सीलस्स विञ्ञेय्यं आनिसंसकथामुखं॥
>
> विसुद्धिमग्ग

शीलवानों को अपने शील के कारण अपनी निन्दा-प्रशंसा का भय नहीं रह जाता। उन्हें यश और आनन्द मिलता है। शील गुणों का मूल है। शील से दोषों का बल क्षीण हो जाता है। यह शील का महात्म्य है।

शील के मुख्य लाभों का वर्णन इस प्रकार किया गया है। एक बार भगवान् ने पाटलिग्रामवासी उपासक उपासिकाओं को सम्बोधन करके शील के विषय में यों कहा, गृहपति गण! शील पालन के पाँच महालाभ हैः—

(१) पाप-विषय में लिप्त न हो, सदाचारी रह, अप्रमादी हो अपने कर्तव्य का पालन करने से अपार भोग-वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यह शील-पालन का प्रथम लाभ है।

(२) फिर, शीलवान् का सुयश सर्वत्र फैलता है। यह दूसरा लाभ है।

(३) जिस सभा में भी जाते हैं उसमें शीलवान पुरुष निर्भय रहते हैं, क्योंकि उन्हें किसी का भय नहीं। यह तीसरा लाभ है।

(४) मरते समय शीलवान् पुरुष का होश कायम रहता है। यह चौथा लाभ है।

(५) शीलवान् पुरुष देहत्याग करने पर स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है। यह पाँचवाँ लाभ है।

शील के भौतिक लाभ चाहे जो भी हों, पर उसका मुख्य लाभ आध्यात्मिक है। शीलवान् के मनमें जो आत्म-स्थिरता या आत्म-शक्ति होती है, वह दुःशील को सुलभ नहीं। शील सम्पूर्ण मानसिक ताप को शान्त कर देता है। अशान्त पुरुष सदा यही सोचा करते हैं कि:—

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।"

धम्मपदं १।३

उसने मुझे गाली दी, मुझे मारा, मुझे हराया, मुझे लूट लिया। इस तरह सोचते-सोचते लोग अपने हृदय में वैर-रूपी आग जलाते रहते हैं। वैर का मूल कारण दुःशीलता ही है। वैराग्नि का शमन शील से ही हो सकता है। कहा है:—

न तं सजलदा वाता न चापि हरिचन्दनं।
नेव हारा न मणयो न चन्दकिरणंकुरा॥
समयन्तीध सत्तानं परिलाहं सुरक्खितं।
यं समेति इदं अरियं सीलं अच्चन्तसीतलं॥

विसुद्धिमग्ग

उत्तम शील अत्यन्त शीतल होता है। प्राणियों के जिस ताप को यह शान्त करता है, उसे तर हवा, हरिचन्दन, हार, मणि और चन्द्रमा की किरणें भी नहीं शान्त कर सकती।

मनुष्य मन, वचन और कर्म से जो कुछ करता है। वह सब सुशीलता और दुःशीलता से व्याप्त है। कायिक-वाचिक और मानसिक सभी कर्म यदि शील के साथ किये जाते हैं तो महाफल-दायक होते हैं। यदि दुःशीलता के साथ किये जाते हैं तो अनिष्टकर होते हैं। पूजा, वंदना, परित्राण पाठ, दान, पर्वोत्सव और तीर्थयात्रा आदि का शील से ही संबंध है। यदि शील है तो ये सब क्रियाएँ सार्थक हैं, वास्तविक हैं अन्यथा सब दिखावा मात्र है। उनका वास्तविक मूल्य नहीं के बराबर है। शील के विषय में भगवान् बुद्ध ने तो यहां तक कहा है किः—

सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गि सिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्ड असञ्ञतो ॥

धम्मपदं २२।३

दुःशील और असयमी होकर राष्ट्र का अन्न खाने से आग की लपट के समान तपे हुए लोहे के गोले को खा लेना अच्छा है।

वंदना—वंदना से अभिप्राय है श्रद्धा और नम्रता के साथ तिरत्न का गुण कीर्तन। गुण कीर्तनात्मक स्तुति से एक ओर जहाँ बुद्ध, धर्म और संघ रूपी रत्नों की विशेषताओं का बोध होता है वहां उन गुणों के निरंतर पाठ और बोध से हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है; जिससे हमारे मन में अविकसित सद्गुणों के विकास का अवसर मिलता है। वंदना से चित्त का झुकाव अच्छी बातों की ओर होता है। मन का अच्छी बातों की ओर झुकाव अर्थात् मन का सम्यक् प्रणिधान परम कल्याणकारी होता है। भगवान् ने कहा है कि—

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसोनं ततो करे ॥

धम्मपदं ३।११

सम्यक् प्रणिधान या अच्छी बातों में स्थित चित्त जो कल्याण करता है। उसे माता-पिता तथा दूसरे रिश्तेदार नहीं कर सकते।

भावना—धर्माचरण में शील के बाद भावना या ध्यान का स्थान है और भावना के बाद प्रज्ञा का। भावना और प्रज्ञा वस्तुतः अन्योन्याश्रित हैं—एक दूसरे के सहारे ठहरी हैं। भावना चित्त एकाग्र करने का नाम है। चित्त के एकाग्र होने पर प्रज्ञा स्फुरित होती है। पर एकाग्रता भी तब तक नहीं होती, जब तक मनुष्य प्रज्ञावान् न हो। भगवान् ने कहा है:—

नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बाण सन्तिके॥

धम्मपदं २५।१३

जिसमें प्रज्ञा नहीं उसका चित्त एकाग्र (ध्यानस्थ) नहीं होता जिसका चित्त एकाग्र (ध्यानस्थ) नहीं वह प्रज्ञावान् नहीं हो सकता, जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं वही निर्वाण के पास है।

प्रज्ञा का विकास या उस अवस्था तक पहुँचना जिसमें सभी आश्रव या मल नष्ट हो जायँ सब का परम कर्त्तव्य है। अविकसित अवस्था में प्रज्ञा सभी के पास है, उसे शील और भावना द्वारा विकास करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। शील और भावना के द्वारा प्रज्ञा का विकास करते हुए जीना उत्तम जीवन है। भगवान ने कहा है कि:—

यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो॥

धम्मपदं ८।१२

दुष्प्रज्ञ और असमाहित (= भावना रहित) होकर सौ वर्ष के जीने से ध्यानी और प्रज्ञावान होकर एक दिन का जीना अधिक श्रेयस्कर है।

भावना और प्रज्ञा के मार्ग पर चलने की शील ही प्रथम सीढ़ी है। इतना ही नहीं, संसार में जीने के लिए शील ही एक-मात्र समाज को सुसंस्कृत बनाने का साधन है। भावना और प्रज्ञा के बिना भी मानवीय जीवन सम्भव हो सकता है। पर शील के बिना क्षण भर भी नहीं!

परित्राण—परित्राण का अर्थ है रक्षा। परित्राण उन मांगलिक और कल्याणकारी वचनों का पाठ है जिनके विषय में एक दीर्घ कालीन परंपरा से यह विश्वास किया जाता है कि उनके पाठ से विघ्न बाधाएँ दूर होती हैं। ये कल्याणकारी वचन बहुत ही मधुर शिक्षाओं से पूर्ण हैं। गृहस्थों के विवाहादि मांगलिक कार्यों के अवसर पर तथा श्राद्ध इत्यादि के समय एवं रोगादि बाधाओं की शांति के निमित्त बौद्ध आचार्य परित्राण देशना करते हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दुओं की सत्यनारायण कथा और मुसलमानों के मौलूद शरीफ़ की भाँति बौद्ध उपासक भी बड़े सज धज के साथ परित्राण-देशना करवाते हैं। वेदी का-सा एक ऊँचा स्थान बनाकर उस पर फूल-पत्ते और पताकाओं से सजा कर एक मंडप तैयार करते हैं। मंडप के मध्य में कपड़े से ढका हुआ एक जल का कलश रख दिया जाता है। सामने भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र को फूल-मालादि से सजाये हुए एक ऊँचे स्थान पर रखते हैं। चारों ओर धूप-गन्ध भी जला दी जाती है। नियत समय पर भिक्षुओं को बड़े सम्मान के साथ ले आते हैं। भिक्षु मंडप में जाकर कलश के चारों ओर गोलाकार में बैठ जाते हैं। तत्पश्चात् उपासक और उपासिकाएँ वेदी के नीचे यथास्थान बैठ जाती हैं।

तब प्रधान उपासक पान और सुपारी प्रधान भिक्षु को अर्पित कर और घुटने टेककर तीन बार प्रणाम करके परित्राण-देशना की याचना करता है। इसके बाद कलश के कनखे में तिबराया हुआ एक लम्बा धागा बांध दिया जाता है। धागा मंडप में चारों ओर भिक्षुओं के

सामने से गुजरता है जिसे सभी भिक्षु अपने दाहिने हाथ से पकड़ लेते हैं। धागे को मंडप से निकाल कर उपासक उपासिकाओं के बीच भी चारों ओर घूमा दिया जाता है; जिसे सभी पकड़ लेते हैं। इस तरह मानों सभी एक सूत्र में सम्मिलित हो जाते हैं।

परित्राण देशना का पाठ आरंभ होता है। भिक्षु एक स्वर से कुछ सूत्र और गाथाओं का उच्चारण करते हैं जिनमें बुद्ध, धर्म, संघ, शील, समाधि, प्रज्ञा इत्यादि के गुण और गौरव कहे जाते हैं। रतन सूत्र, मंगल सूत्र, और करणीय सूत्र इत्यादि इस समय के खास सूत्र होते हैं। जब पाठ समाप्त हो जाता है तब भिक्षु उपासकों को सूत्रों का तात्पर्य समझाते हुए आशीर्वाद और स्वस्तिकार देते है—इस सत्य वचन से तुम्हारी स्वस्ति हो, मंगल हो। (एतेन सच्च वज्जेन होतु जय मंगलं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु) मानों सूत्रों में कहे गये सत्य की दुहाई देकर आशीर्वाद दिया जाता है। फिर कलश का मुँह खोल दिया जाता है। उसके पानी को आशीर्वचन पढ़ पढ़कर पल्लव से भिक्षु सब लोगों पर छिड़कते हैं। कितने उसे पीकर माथा पर थोप लेते हैं। धागे को समेट लिया जाता है। भिक्षु उसे उपासकों की दाहिनी कलाई पर रक्षा-बन्धन बाँधते हैं और यह मंत्र पढ़ते हैं:—

सब्बीतियो विवज्जन्तु, सब्बरोगो विनस्सतु।
माते भवतु अन्तरायो, सुखी दीघायुको भव॥

तुम्हारे सभी विघ्न छिन्न-भिन्न हो जायँ, सभी रोग नष्ट हो जायँ, तुम्हें किसी प्रकार की बाधा न हो, सुखी और दीर्घायु हो वो।

अन्त में कुछ मिष्ठान वितरण पूर्वक यह कार्य सम्पूर्ण होता है।

विवाहादि संस्कार—संस्कारों से मनुष्य-जीवन सुसंकृत होकर ऊँचा होता है। ऐसा सुसभ्य मानव-समाज का बहुत प्राचीन काल से विश्वास चला आता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और जाति में

जन्म लेकर मृत्यु पर्यन्त के कुछ न कुछ संस्कार प्रचलित हैं। अतएव बौद्ध समाज में भी १० संस्कार होते हैं:—

(१) गर्भ मंगल, (२) नाम करण, (३) अन्नाशन, (४) केश कप्पन, (५) कण्ण-विज्झन, (६) विद्यारम्भ, (७) विवाह, (८) प्रव्रज्या, (६) उपसम्पदा और (१०) मृतक संस्कार।

अभिवादन व शिष्टाचार—अभिवादन का अर्थ है नमस्कार। प्रत्येक देश के शिष्टाचार में अभिवादन का बड़ा महत्व है। अभिवादन के महत्व को बताते हुए भगवान ने कहा है:—

यं किंचि यिट्ठं च हुतं च लोके,
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति,
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो॥

धम्मपदं ८।६

सरल चित्त साधु पुरुषों को किया गया अभिवादन श्रेयकर होता है। पुण्य की इच्छा से किया गया यज्ञ-हवनादि उस अभिवादन के चौथे भाग की बराबरी नहीं कर सकता।

अभिवादनसीलस्स निच्चं बद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥

धम्मपदं ८।१०

जो अभिवादन शील है, जो बड़ों की सेवा करता है, उसकी आयु, यश, सुख और बल ये चार बातें (= धर्म) बढ़ती हैं।

पर्व-त्योहार—पर्व शब्द का व्याकरणानुसार अर्थ है पोर या गांठ। पर सामान्यतया उस पवित्र काल से इसका अभिप्राय होता है; जिसमें कोई धार्मिक पर्वोत्सव मनाया जाता है। इन समारोहों के अवसर पर

हम विशेष रूप से अपने शास्ता (= शिक्षक) का स्मरण सामाजिक रस्मों के द्वारा करते हैं। पर्वोत्सव धर्म का ही अंग है, क्योंकि त्रिशरण सहित शील ग्रहण और दानादि धार्मिक क्रियाओं के साथ उनका सम्पादन होता है। यह सब धार्मिक क्रियायें शील के ही अंगभूत हैं। शील ही उनमें प्रधान है।

तीर्थ-स्मारक—तीर्थ का व्याकरणानुसार अर्थ घाट है। पर व्यवहार में उन पवित्र स्थानों को कहते हैं जिनका संबंध हमारे शास्ता के जीवन की किसी घटना से है अथवा जहाँ पर उनसे और उनके शिष्यों से संबंध रखने वाले स्मृति-चिन्ह हैं। तीर्थ यात्रा का मुख्य प्रयोजन उन-उन धार्मिक घटनाओं का आँखों देखा स्मरण है।

दान—दान का अर्थ है दूसरे के निमित्त अपने स्वत्व का परित्याग। दोनों में धर्मदान सर्वश्रेष्ठ होता है। भगवान् ने कहा है—

"सब्बदानं धम्मदानं जिनाति"

धम्मपदं २४।२१

धर्मदान देने वाले दानियों में सर्वश्रेष्ठ होते हैं।

जो मनुष्य अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का दान करता है वह वस्तु उसे अवश्य मिलती है। भगवान् ने स्वयं इस विषय में कहा है:—

"मनापदायी लभते मानापं।
अग्गस्स दाता लभते पुनग्गं॥"

दान लेने वालों में वे लोग श्रेष्ठ होते हैं जो राग, द्वेष, मोह-रहित संयमी एवं महान आत्मा हैं। यों तो जो भी दुःखी, असमर्थ, निर्बल और असहाय हैं उन्हें दान देना चाहिए और वे दान के उपयुक्त पात्र हैं, परन्तु समर्थों और सबलों में जो संसार के हित के लिए अविछिन्न व्रतधारी हैं, असंग्रह का व्रत लिया है, जो अपने ज्ञानोपदेश से संसार के

कल्याण में निरत हैं वे दान के उत्तम पात्र हैं। इस प्रकार के राग-द्वेषादि-रहित महात्माओं को दान देने का अपार फल होता। भगवान् ने कहा है—

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपदं २४।२३

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष राग है। इसलिए वीतराग मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिण दोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होनि महप्फलं॥

धम्मपदं २४।२४

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष राग है। इसलिए द्वेष-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपदं २४।२५

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष मोह है। इसलिए मोह-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपदं २४।२६

खेतों का दोष तृण है, और मनुष्यों का दोष इच्छा है। इसलिए इच्छा-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

उपदेश

उपदेश परिच्छेद में धम्मपद से चुने हुए भगवान् बुद्ध के उपदेश हैं। खुद्दकनिकाय में धम्मपद १५ वां ग्रन्थ है, जो भगवान बुद्ध के धर्म शिक्षाओं का सग्रह है। इस धम्मपद ग्रन्थ में २६ वग्ग (अध्याय) तथा ४२३ गाथाएं (श्लोक) हैं। यह पवित्र धम्मपद ग्रन्थ केवल बौद्धों के लिये ही उपयोगी नहीं, वरन् भूमण्डल के समस्त लोगों के लिये परम उपयोगी तथा पठन-पाठन और मनन करने योग्य है। इस पक्षपात रहित सद् ग्रन्थ का पृथिवी की प्रायः सभी मुख्य-मुख्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। श्री० अल्बर्ट, जे० एडमन्ड (Prof. Albert J. Edmunds) अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं:—

"यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यह है। ...."

If ever an immortal classic was produced on the continent of Asia it (Dhammapada) is this............"

धम्मपद के सम्बन्ध में भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी ने अपने धम्मपद के अनुवाद की भूमिका में इस प्रकार लिखा है:—

"एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवन भर साथी बनने की यदि कभी आपको इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको 'धम्मपद' से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।"

"जिस प्रकार महाभारत में भगवद्गीता एक छोटी किन्तु अमूल्य कृति है, उसी प्रकार त्रिपिटक में 'धम्मपद' एक छोटा किन्तु मूल्यवान्

रत्न है। काल की दृष्टि से भगवद्गीता की अपेक्षा धम्मपद प्राचीनतर है।

भगवद्गीता की विशेषता है, कई दार्शनिक विचारों के समन्वय का प्रयत्न; इसीलिये गीता के टीकाकारों में आपस में मतभेद है; लेकिन धम्मपद एक ही मार्ग है, एक ही शिक्षा है। उस पथ के पथिक का आदर्श निश्चित है।

यह बात शायद सार्थक है कि गीता की अपेक्षा प्रचीनतर होते हुए भी धम्मपद की केवल एक टीका—'धम्मपद-अट्ठकथा' उपलब्ध है, और भगवद्गीता की जितने पण्डित उतनी भिन्न-भिन्न टीकाएँ हैं।"

धम्मपद के विषय में भगवान् बुद्ध ने स्वयं कहा है कि:—

यो च गाथा सतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥
(धम्मपदं, सहस्सवग्ग)

यदि कोई अनर्थ-पदों से युक्त सैकड़ों गाथाएँ पढ़ें। उनकी अपेक्षा धम्मपद की एक गाथा भी पढ़ना श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति लाभ होता है।

तत्वज्ञान—तत्वज्ञान में बौद्ध-तत्वज्ञान को अति संक्षेप में दिखाने की चेष्टा की गई है। बुद्ध का ज्ञान अनंत है। उन्होंने ८४ हज़ार धर्म स्कंधों का उपदेश दिया है। बुद्ध के उपदेशों का सबसे बड़ा संग्रह त्रिपिटक शास्त्र है। त्रिपिटक शास्त्र तीन भागों में विभक्त है विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में भिक्षुओं के पालनीय नियमों का वर्णन है। सुत्त पिटक में भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न लोगों को दिया हुआ भगवान् का उपदेश है। अभिधम्म पिटक बौद्ध दर्शन है।

(क) सुत्त पिटक पाँच निकायों में विभक्त है:—

(१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय, (४) खुद्दक निकाय।

खुद्दक निकाय में १५ ग्रंथ हैं:—

(१) खुद्दक पाठ, (२) धम्मपदं (३) उदान, (४) इति-वुत्तक, (५) सुत्त निपात, (६) विमान वत्थु, (७) पेत वत्थु, (८) थेर-गाथा, (९) थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदा मग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चरिया पिटक।

(ख) विनय पिटक पाँच भागों में विभक्त है:—

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिक, (४) पाचित्तिय, (५) परिवार।

(ग) अभिधम्म पिटक में निम्नलिखित सात ग्रंथ हैं:—

(१) धम्म संगनी, (२) विभंग, (३) धातु कथा, (४) पुग्गल पञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

त्रिपिटक के तत्वज्ञान का सार यह है:—

बुद्ध-धम माध्यमिक मार्ग (Middle Path) है, इसमें न तो व्रत, तपस्या आदि द्वारा शरीर को सुखाने का आदेश है और न विषय-भोगों में लिप्त रहने का ही।

बुद्ध-धर्म में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद नहीं है। शाश्वतवाद का अर्थ है—किसी नित्य-कूटस्थ आत्मा का विश्वास करना। उच्छेद-वाद का तात्पर्य है, शरीर के साथ आत्मा का भी विनाश मानना।

बुद्ध-धर्म में ५ स्कंध माने गये हैं, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान।

(१) पृथ्वी, अप, तेज और वायु इन चार भूतों तथा इनके कार्यों को रूप-स्कंध कहते हैं।

(२) सुख-दुःख आदि के अनुभवों को वेदना-स्कंध कहते हैं।

(३) हरा, पीला, लाल, छोटा-बड़ा इत्यादि पृथक-करणज्ञान को संज्ञा-स्कंध कहते हैं।

(४) पाप-पुण्य, बुरा-भला, स्वर्ग-नर्क आदि भावनाओं या धारणाओं को संस्कार-स्कंध कहते हैं।

(५) सम्पूर्ण विषयों को जानने और समझने को ही विज्ञान-स्कंध कहते हैं। इसी को चित्त या मन भी कहते हैं।

ये पाँचों स्कंध नाम और रूप दो भागों में विभक्त हैं। रूप स्कंध को छोड़कर शेष चारों स्कंध नाम-स्कंध के अन्तर्गत हैं। अब इन चारों नाम-स्कंधों में से विज्ञान-स्कंध सब में अग्रगामी और श्रेष्ठ है। वेदना, संज्ञा, संस्कार यह तीनों मन की वृत्तियाँ या अनुषांगिक-धर्म कहलाते हैं। मन का नाम चित्त और इन तीनों का नाम चेतसिक है। यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड चित्त, चेतसिक और रूप का विस्तार तथा खेल है। निर्वाण इनसे परे है। चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण यही बौद्ध-दर्शन के मूल चार तत्व हैं।

अति प्राचीन काल से जो यह धारणा चली आ रही है कि चेतन आत्मा ज्ञान स्वरूप होते हुए भी बिना जड़ मन के संयोग से बोध नहीं कर सकता है; परन्तु बौद्ध तत्व ज्ञान में मन जड़ नहीं और आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति मन और शरीर से संयुक्त है। इसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं। शरीर रूप कहलाता है और मन के चार आकार हैं—वेदना संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इनमें वेदना, संज्ञा और संस्कार को चेतसिक कहते हैं और विज्ञान को मन या चित्त कहते हैं।

माता जिस प्रकार अपना जीवन देकर भी अपने इकलौते पुत्र

की रक्षा करती है, उसी प्रकार सब प्राणियों के साथ अतुल प्रेम का बर्ताव करना चाहिए।

देवी-देवताओं का भरोसा छोड़कर अपना भरोसा करना चाहिए। मनुष्य जो अविद्या और तृष्णा के कारण जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुःख चक्र में पड़ा है, उससे छुटकारा पाने के लिये उसे शील, समाधि और प्रज्ञा का सम्यक् अनुशीलन करना चाहिये।

देवता, पितरों को सन्तुष्ट व प्रसन्न करने के लिये "स्वाहा, स्वधा" के द्वारा हो या और किसी पद्धति के द्वारा पशु-पक्षी और नर-बलि आदि करना तथा मद्य, भाँग, चरस, इत्यादि नशे की चीजों को अर्पण करना धर्म विरुद्ध है।

प्रगतिशील मानव जाति के किसी भी भाग को अधिकार-वंचित एवं उनके उन्नति-विकाश के मार्ग को अवरुद्ध, और मानवीय उच्चाकांक्षाओं को पद-दलित करके उनके श्रम से वंशानुगत अनुचित लाभ उठाना और फिर यह भी कहना कि हमारा यह व्यवहार न्यायोचित है, क्योंकि ये लोग विधाता के चरण से उत्पन्न हुए हैं और पूर्व जन्म के पाप के कारण शूद्र या अछूतों के घर जन्मे हैं। इस प्रकार जन्मना-चातुर्वर्ण्य व्यवस्था हो या अन्य कोई व्यवस्था, न्याय विरुद्ध और स्वार्थ पूर्ण है। मनुष्य की श्रेष्ठता वा बड़ाई उसके विद्या और आचरण से हैं, न कि किसी जाति या कुल विशेष में जन्म लेने से।

त्रिपिटक के मनन पूर्वक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि:—

(१) बुद्ध दार्शनिक विषय में न उच्छेदवादी और न शाश्वत-वादी बल्कि सन्ततिवादी थे।

(२) क—वे धार्मिक विषय में कोई ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानते थे बल्कि वे अपना प्रमाण स्वयं आप थे अर्थात् वे स्वतः प्रमाण थे। हाँ, वे यह बात जरूर मानते थे कि मेरे पहले भी मेरे जैसे बुद्ध हो चुके हैं

उन्होंने जो सत्य, अहिंसा और न्याय का मार्ग दिखलाया था, उसको जनता भूल गई, और मिथ्या दृष्टियां में फँस गई। अब मैं उन्हीं पूर्व बुद्धों की सचाई को फिर से दिखलाता हूँ।

ख बुद्ध भोग या मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी देवी-देवता ईश्वर-परमेश्वर की उपासना आराधना का उपदेश नहीं करते थे। वे मनुष्य को पारस्परिक सहायता-सहानुभूति, और पवित्र जीवन यापन करने का उपदेश करते थे।

ग—बुद्ध का मार्ग—'कामसुखल्लिकानुयोग', 'अत्तकिलमतानुयोग' अर्थात् विषय-भोगों में डूब जाना या शरीर को सुखवाना—इन दोनों के बीच का मार्ग—माध्यमिक मार्ग—अर्थात् संयम का मार्ग सिखलाता है।

३—सामाजिक विषय में बुद्ध जन्म से वर्ण या जाति नहीं मानते थे। वे अपने शिष्यों—श्रमण धर्म—में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और अति शूद्र सबको ले लेते थे। यही प्राचीन भारतीय आचार्यों से बुद्ध की विशेषता थी।

अब हम आचार्य नागार्जुन के शब्दों में इस प्रस्तावना का उपसंहार करते हैं:—

अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्॥
यः प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम्।
देशयामास सम्बुध्दस्तं बन्दे वदतां वरम्॥

—माध्यमिक कारिका

जिन सम्बुद्ध ने न निरुद्ध होने वाले, न उत्पन्न होने वाले, न उच्छिन्न होने वाले, न शाश्वत, न एकार्थ, न अनेकर्थ, न आने वाले, न निकलने वाले प्रपञ्च के उपशम (= शान्ति) स्वरूप और शिव रूप, प्रतीत्य समुत्पाद का उपदेश दिया उन प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।

बुद्धाब्द २४६१
खृष्टाब्द १६४७

बोधानन्द महास्थविर

पूजा परिच्छेद

१. बुद्ध-पूजा और अनित्य-भावना

महाकारुणिक भगवान् तथागत बुद्ध के समय में बौद्ध गृहस्थ पुष्प, माला, धूप आदि तथागत को देकर उनका सम्मान करते थे, इसीलिए उनकी कुटी के पास सुगन्धियों का ढेर लग जाता था। सदा सुगन्धियों से सुवासित होने के कारण ही बुद्ध-कुटी को गन्ध-कुटी कहा जाता था।

सम्प्रति भी बुद्धमूर्ति की पूजा पुष्प, धूप, दीप, आहार आदि से करते है। पूजा करने के समय बौद्ध अपने हृदयस्थ भावों को इन मंत्रों से प्रकट करते हैं :—

(१) निरोध-समापत्तितो उट्ठहित्वा विय निसिन्नस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स-इमेना पुप्फेन पूजेमि।

(२) इदं पुपफ पूजं बुद्ध, पच्चेक - बुद्ध अग्गसावक महासावक अरहंतानं सभावसीलं, अहंपि तेसं अनुवत्तको होमि।

(३) इदं पुप्फंदानि वण्णेनपि सुवण्णं गंधेनपि सुगंधं संठाने नपि सुसंठानं, खिप्पमेव दुवण्णं दुगंधं दुसंठानं भविस्सति।

(४) एवमेव सब्बे संखारा अनिच्चा, सब्बे संखारा दुक्खा, सब्बेधम्मा अनत्ताति।

(५) इमेना वंदन-मानन-पूजापटित्यानुभावेन आसवक्खयो होतु, सब्बे दुक्खा विनस्सन्तु।

अर्थ—निरोध नामक समाधि से उठकर विराजमान भगवान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध की हम इस पुष्प के द्वारा पूजा करते हैं। इसी प्रकार

बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अग्र श्रावक, महाश्रावक और अर्हत् लोग भी अपने पहले जीवन में अपने से पूर्व बुद्धों की पुष्प आदि से पूजा किया करते थे। हम भी उन्हीं लोगों का अनुसरण करते हैं॥ १-२ ॥ यह फूल अभी देखने में अत्यन्त सुन्दर है, बहुत सुगन्धित है और बहुत सुहावनी बनावट का है। किन्तु बहुत जल्दी यह कुरूप और दुर्गन्ध युक्त हो जायगा। इसकी बनावट बिगड़ जायगी। यह नष्ट हो जायगा॥ ३ ॥ इसी प्रकार उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थ नाशवान और दुःख पूर्ण हैं तथा सब अनुत्पन्न सत्ता अनात्म है॥ ४ ॥ इस स्तुति, वंदना और पूजा के प्रभाव से हम लोगों के काम-क्रोधादि पाप और सब दुःख दूर हों॥ ५ ॥

२. पुष्प-पूजा

वण्ण-गन्ध-गुणोपेतं एतं कुसुम-सन्ततिं।
पूजयामि मुनिन्दस्स, सिरिपाद-सरोरुहे॥

अर्थ—मैं वर्ण, गन्ध और सुन्दर गुण से युक्त इस पुष्प से भगवान् बुद्ध के कमलवत् श्रीचरणों में पूजा करता हूँ।

३. धूप-पूजा

गन्धसम्भार युत्तेन धूपेनाहं सुगन्धिना।
पूजये पूजनेय्यन्तं, पूजाभाजन मुत्तमं॥

अर्थ—गन्ध से युक्त धूप की सुगन्धि से मैं उत्तम पूजा के योग्य पूजनीय बुद्ध की पूजा करता हूँ।

४. सुगन्धि-पूजा

सुगन्धिकाय वदन मनन्त गुण-गन्धिना।
सुगन्धिनाहं गन्धेन पूजयामि तथागतं॥

अर्थ—मैं सुगन्धि-युक्त शरीर एवं मुख वाले, अनन्त गुण-सुगन्धि से पूर्ण तथागत की सुगन्धि की गन्ध से पूजा करता हूँ।

५. प्रदीप-पूजा

घनसारप्पदित्तेन दीपेन तम-धंसिना।
तिलोक-दीपं सम्बुद्धं पूजयामि तमोनुदं॥

अर्थ—अन्धकार को नष्ट करने वाले तेल से जलते हुए प्रदीप से मैं तीनों लोकों के प्रदीप-तुल्य अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाले भगवान् बुद्ध की पूजा करता हूँ।

६. चैत्य-वन्दना

वन्दामि चेतियं सब्बं सब्बठानेसु पतिट्ठितं।
सारीरिक धातु महाबोधिं बुद्धरूपं सकलं सदा॥

अर्थ—सब स्थानों में प्रतिष्ठित शारीरिक धातु (=अस्थि), बोधि-वृक्ष और बुद्ध-प्रतिमा—इन सब चैत्यों की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

७. बोधि-वन्दना

यस्स मूले निसिन्नोव सब्बारि विजयं अका।
पत्तो सब्बञ्ञुतं सत्था वन्दे तं बोधिपादपं॥१॥
इमेहेते महाबोधि लोकनाथेन पूजिता।
अहम्पि ते नमस्सामि बोधिराजा नमत्थु ते॥२॥

भगवान् बुद्ध ने जिस बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए ही (राग, द्वेष, मोह और मार की सेना आदि) सब शत्रुओं पर विजय पाई तथा सर्वज्ञता ज्ञान प्राप्त किया, उस बोधि वृक्ष को नमस्कार है।

यह महाबोधि वृक्ष लोकनाथ भगवान् बुद्ध द्वारा पूजित हैं, मैं भी उन्हें नमस्कार करता हूँ—'हे बोधि राजा! तुम्हें मेरा नमस्कार है' ॥२॥

आहार-पूजा

अधिवासेतु नो भन्ते भोजनं परिकप्पितं ।
अनुकम्पं उपादाय परिगण्हातु मुत्तमं ॥

अर्थ—भन्ते ! हमारे चढ़ाए हुए उत्तम भोजन को अनुकम्पा करके ग्रहण करें ।

७. संकल्प

इमाय धम्मानुधम्म पटिपत्तिया बुद्धं पूजेमि ।
इमाय धम्मानुधम्म पटिपत्तिया धम्मं पूजेमि ।
इमाय धम्मानुधम्म पटिपत्तिया संघं पूजेमि ॥१॥
अद्धा इमाय पटिपत्तिया जातिजरामरणम्हा परिमुञ्चिस्सामि ॥२॥
इमिना पुञ्ञकम्मेन मा मे बालसमागमो ।
सतं समागमो होतु याव निब्बानपत्तिया ॥३॥
देवो वस्सतु कालेन सस्ससम्पत्ति हेतु च ।
फीतो भवतु लोको च राजा भवतु धम्मिको ॥४॥

अर्थ—इस धर्म की प्रतिपत्ति से मैं बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा करता हूँ ॥१॥ निश्चय ही प्रतिपत्ति से जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से मुक्त हो जाऊँगा ॥२॥ इस पुण्य कर्म से निर्वाण प्राप्त करने के समय तक कभी भी मूर्खों से मेरी संगति न हो, सदा सत्पुरुषों की संगति हो ॥३॥ फसल की वृद्धि के लिए समय पर पानी बरसे, संसार के प्राणी उन्नति करें और शासक धार्मिक हों ॥४॥

शील परिच्छेद

त्रिशरण-सहित पंचशील

बुद्ध को प्रणाम

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ।

उस यथार्थ ज्ञानी पूज्य भगवान् को नमस्कार ।

त्रिशरण

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

दुतियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, संघं सरणं गच्छामि ।

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

ततियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि, संघं सरणं गच्छामि।

तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ।

पंचशील

१—पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
२—अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
३—कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
४—मुसावादा वेमरणी सिक्खापदं समादियामि।
५—सुरामेरयमज्ज पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

१—मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
२—मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
३—मैं पर-स्त्री-गमनादि, नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
४—मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
५—मैं सुरा-मेरय आदि मादक द्रव्यों के सेवन तथा प्रमाद के स्थान जुए आदि के खेल से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

आचार्य द्वारा पंचशील ग्रहण करने की विधि

शिष्य—ओकास, अहं भन्ते! तिसरणेन सह पंचसील धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते!

दुतियम्पि अहं भन्ते! तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

ततियम्पि अहं भन्ते! तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

गुरु—यमहं वदामि तं वदेहि।*

शिष्य—आम भन्ते।

(नमस्कार मंत्र)

गुरु शिष्य साथ-साथ—

नमो तस्स भगवतो अरहतोसम्मा सम्बुद्धस्स (तीन बार)

(सरणागमन मंत्र)

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि।

दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि।

गुरु—तिसरण-गमनं सम्पूण्णं।

शिष्य—आम भन्ते।

---

* बहुवचन होने 'वदेथ' अर्थात् 'तुम' की जगह 'तुम लोग' कहना चाहिए।

(पंचशील मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ साथ—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
३. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
५. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

गुरु—तेसरणेन सद्धिं पञ्चसीलं धम्मं साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेतब्बं।

शिष्य—आम भन्ते।

सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता

आचार्य द्वारा पञ्चशील ग्रहण करने की विधि का भाषानुवाद

शिष्य—अवकाश दीजिए भन्ते! मैं त्रिशरण-सहित, पंचशील धर्म की याचना करता हूँ। भन्ते, अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए।

द्वितीय बार..................तृतीय बार..................याचना करता हूँ। अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए।

गुरु— मैं जो कहता हूँ, तुम वही कहो।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(प्रणाम मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम

(त्रिशरण मंत्र)

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ।

गुरु—त्रिशरण समाप्त हुआ।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(पंचशील मन्त्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

१—मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

२—मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

३—मैं पर-स्त्री गमनादि नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

४—मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

५—मैं सुरा-मेरय- मद्यादि नशे का सेवन तथा प्रमाद के स्थान (जुए आदि के खेल) से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

गुरु—त्रिशरण के सहित पंचशील धर्म को अच्छी तरह से सुरक्षित रखो और अप्रमत्त भाव से पालन करो।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

सारे प्राणी सुखी हों।

अष्ट उपोसथ शील

(प्रार्थना मंत्र)

शिष्य—ओकास अहं भन्ते ! तिसरणेन सह अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते !

दुतियम्पि अहं भन्ते ! तिसरणेन सह अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

ततियम्पि अहं भन्ते ! तिसरणेन सह अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

गुरु—यमहं वदामि तं वदेहि*

शिष्य—आम भन्ते।

(नमस्कार मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स (तीन बार)

(सरणागमन मंत्र)

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि।

---

* बहुवचन होने से 'वदेथ' कहना चाहिए।

दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि।

गुरु—तिसरण-गमनं सम्पूण्णं।

शिष्य—आम भन्ते।

(अष्टशील मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

१—पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
२—अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
३—अब्रह्मचरिया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
४—मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
५—सुरमेरय मज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
६—विकाल भोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
७—नच्च-गीत-वादित-विसूक-दस्सन-माला, गंध-विलेपन-धारण मण्डन विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
८—उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

गुरु—तिसरणेन सद्धिं अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेहि *

शिष्य.......आम भन्ते।

सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता।

---

* बहुवचन होने से सम्पादेथ कहना चहिए।

अष्ट उपोसथ शील का भाषानुवाद

(अष्टशील प्रार्थना मंत्र)

शिष्य—अवकाश दीजिए, भन्ते, मैं त्रिशरण सहित आठ अंगों से युक्त उपोसथ शील की याचना करता हूँ। भन्ते अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए, द्वितीय बार.........। तृतीय बार ......भी याचना करता हूँ। अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए।

गुरु—जो मैं कहता हूँ, तुम वही कहो *

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(प्रणाम मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

इम उन भगवान्, अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम करते हैं।

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।

मैं धर्म की शरण जाता हूँ।

मैं संघ की शरण जाता हूँ।

मैं द्वितीय और तृतीय बार भी त्रिशरण में जाता हूँ।

गुरु—त्रिशरण में प्रवेश समाप्त हुआ।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

[अष्टशील मंत्र]

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

१. मैं प्राणी हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
२. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
३. मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
४. मैं मिथ्या वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

---

* बहु वचन होने से 'तुम लोग' कहना चाहिए।

५. मैं सुरा-मेरय आदि मादक द्रव्यों के सेवन तथा प्रमाद के स्थान जुए आदि के खेल से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

६. मैं विकाल* भोजन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

७. मैं नाच, गाना, बजाना और मेले-तमाशे को देखने तथा माला और सुगंधित लेपनादिकों को धारण करने एवं शरीर शृंगार के लिये किसी प्रकार के आभूषण की वस्तुओं से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

८. मैं बहुत ऊंची गुलगुली और विलासिता को बढ़ाने वाली राजसी शय्याओं पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

गुरु—त्रिशरण सहित अष्ट शील धर्म को अच्छी तरह से सुरक्षित रखो और अप्रमत्त भाव से पालन करो।

शिष्य—जैसी आज्ञा।

सारे प्राणी सुखी हों।

एकादश सुचरित शील

अपने आप ग्रहण करने की विधि

(नमस्कार मंत्र)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स (तीन बार)

[त्रिशरणागमन-मंत्र]

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

---

* बारह बजे दिन के बाद दूसरे दिन सूर्योदय तक बौद्ध भिक्षु लोग भोजन नहीं करते। इसी को विकाल भोजन कहते हैं।

दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।

(एकादश सुचरित शील-मंत्र)

कायिक सुचरित :—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
३. कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
४. सुरा, मेरय, मज्ज, पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

वाचिक सुचरित :—

५. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
६. पिसुनाय वाचाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
७. फरुसाय वाचाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
८. सम्फप्पलापा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

मानसिक सुचरित :—

९. अभिज्झाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
१०. व्यापादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
११. मिच्छादिट्ठया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

इमानि एकादस सुचरित-सिक्खापदं समादियामि ।

(भाषानुवाद)

(प्रणाम-मंत्र)

मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।
(तीन बार)

(त्रिशरण मंत्र)

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।

मैं द्वितीय बार तथा तृतीय बार भी त्रिशरण जाता हूँ।

एकादश सुचरित शील मंत्र

कायिक सुचरित—

(१) मैं प्राणी हत्या से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(२) मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(३) मैं पर-स्त्री गमनादि, नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(४) मैं शराब, ताड़ी, गाँजा, भाँग इत्यादि नशों से तथा प्रमाद के स्थान जुए आदि से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

वाचिक सुचरित—

(५) मैं मिथ्यावचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
(६) मैं चुगली से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
(७) मैं कटु वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
(८) मैं निरर्थक वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मानसिक सुचरित—

(९) मैं लोभ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(१०) मैं क्रोध से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(११) मैं उच्छेदवाद और शाश्वतवाद आदि मिथ्यादृष्टियों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

इन एकादश सुचरित शिक्षाओं को ग्रहण करता हूँ।

इसी प्रकार से दस शील, अष्टशील और पंचशील आचार्य के द्वारा या अपने आप ग्रहण किये जा सकते हैं। भिक्षुओं के २२७ शीलों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। इसके लिये भिक्षु प्रातिमोक्ष नामक ग्रंथ पढ़ना चाहिये।

बुद्ध वन्दना परिच्छेद

त्रिरत्न-वंदना

१. बुद्ध-वंदना

इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरण सम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति।

पूर्व बुद्धों की तरह यह भगवान भी सबके पूज्य, पूर्ण सर्वज्ञ सब सद् विद्याओं और सदाचरणों से युक्त सुन्दर गति वाले, लोक लोकान्तर के रहस्य को जानने वाले सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं और जैसे बिगड़े हुये घोड़े को सारथी ठीक रास्ते पर लाता है वैसे ही राग, द्वेष और मोह में फंसे हुये मनुष्यों को ठीक मार्ग पर लाने वाले, देवता और मनुष्यों के शिक्षक स्वयं बोधस्वरूप और दूसरों को बोध कराने वाले तथा सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यों से युक्त और सम्पूर्ण क्लेशों से मुक्त हैं।

बुद्धं जीवित परियन्तं सरणं गच्छामि॥ १॥

ये च बुद्धा अतीता च, ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुप्पन्ना च ये बुद्धा, अहं वंदामि सब्बदा॥ २॥

मैं अपने जीवन पर्यन्त बुद्ध की शरण जाता हूँ॥ १॥

भूतकाल में जितने भी बुद्ध हुये हैं और भविष्यत् काल में जितने भी बुद्ध होंगे तथा इस वर्तमान काल के भी जितने बुद्ध हैं—उन सबकी हम सदा वंदना करते हैं॥ २॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, बुद्धो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जयमंगलं ॥ ३ ॥

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल बुद्ध ही हमारे सर्वोत्तम शरण हैं। इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं, पादपंसु वरुत्तमं ।
बुद्धे यो खलितो दोसो, बुद्धो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

जो सम्पूर्ण दोष और मल से रहित भगवान बुद्ध हैं, मैं उनकी पवित्र पद-धूलि की नत मस्तक होकर वंदना करता हूँ । यदि अज्ञानतावश मुझसे कोई पाप हुआ हो तो बुद्ध उसको क्षमा करें ॥ ४ ॥

धर्म-वंदना

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहीति।

धर्म जो भगवान् बुद्ध के द्वारा सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है, वह स्वयं प्रत्यक्ष करने का विषय है। इसके पालन करने एवं फल पाने के लिए सब काल और सब देश सुलभ हैं। यह धर्म सब को आचरण करके परीक्षा करने योग्य तथा भगवान् बुद्ध का स्थानापन्न और निर्वाण में पहुँचाने में समर्थ है। यह धर्म विद्वान् पुरुषों के स्वयं अनुभव करने का विषय है।

धम्मं जीवित परियंतं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥

ये च धम्मा अतीता च, ये च धम्मा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये धम्मा, अहं वंदामि सब्बदा ॥ २ ॥

मैं अपने जीवन पर्यन्त धर्म की शरण जाता हूँ ॥ १ ॥

भूत काल के बुद्ध प्रदर्शित धर्मों, भविष्य काल के बुद्ध प्रदर्शित धर्मों तथा वर्तमान काल के बुद्ध-प्रदर्शित धर्मों की मैं सदा वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, धम्मो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जयमंगलं ॥ ३ ॥

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल धर्म ही हमारा उत्तम शरण है । इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं धम्मञ्च दुविधं वरं ।
धम्मे यो खलितो दोसो, धम्मो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

जो व्यावहारिक (संवृत) और पारमार्थिक श्रेष्ठ धर्म हैं । मैं उनकी नतमस्तक होकर वंदना करता हूँ । यदि अज्ञानता वश मुझसे कुछ दोष हुआ हो, तो धर्म उसको क्षमा करें ॥ ४ ॥

३. संघ-वंदना

सुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, सामीचिपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि, अट्ठपुरिस पुग्गला एसभगवतो सावक संघो आहुणेय्यो पाहुणेय्यो, दक्खिणेय्यो, अञ्जलिकरणीय्यो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्साति ।

भगवान् बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्यगण भगवान् के बताए हुए सुन्दर सरल, न्याय और समीचीन (ठीक) मार्ग पर चलने में कुशल हैं ।

यह बुद्ध शिष्य गण ४ युग्म श्रेणियों* में तथा आठ अगों† में विभक्त हैं। जो यह सब बुद्ध-शिष्यगण सेवा-पूजा, दान-सत्कार और प्रणाम के उपयुक्त पात्र हैं। मनुष्यों के पाप क्षय और पुण्य वृद्धि के लिये यह परम पावन अलौकिक पुण्य क्षेत्र हैं।

संघं जीवित परियन्तं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥
ये च संघा अतीता च, ये च संघा अनागता।
पच्चुप्पन्ना च ये संघा, अहं वंदामि सब्बदा ॥ २ ॥

मैं अपने जीवन पर्यन्त संघ की शरण जाता हूँ ॥ १ ॥
भूतकाल के बुद्ध-शिष्य-संघ, भविष्यत् काल के बुद्ध-शिष्य संघ और वर्तमान काल के बुद्ध-शिष्य-संघ की मैं सदा वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, संघो मे सरणं वरं।
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जयमंगलं ॥ ३ ॥

---

*(१) स्रोतापन्न अर्थात् जो निर्वाण की तरफ़ जानेवाली धार में पड़ गया है, अब उसका पतन न होगा और सात जन्म के भीतर उसको अवश्य निर्वाण प्राप्त हो जायगा। (२) सकृदागामी अर्थात् जिसका जन्म अब संसार में केवल एक बार होगा, फिर निर्वाण प्राप्त कर लेगा, (३) अनागामी अर्थात् जो इस लोक में अब जन्म ग्रहण नहीं करेगा किंतु मरने के बाद अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो कर अपने पुण्यों का फल भोगकर वहीं से निर्वाण में चला जायगा और (४) अर्हत् अर्थात् जो इसी शरीर से इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

†मार्ग और फल भेद से यहाँ बुद्ध-शिष्य-गण आठ पुद्गल श्रेणियों में विभक्त हैं। यथा: (१) स्रोत आपत्ति मार्ग लाभी, (२) स्रोतआपत्ति फल लाभी, (३) सकृदागामि मार्ग लाभी, (४) सकृदागामि फल लाभी, (५) अनागामि मार्ग लाभी, (६) अनागामि फल लाभी (७) अर्हत् मार्ग लोभी और (८) अर्हत् फल लाभी।

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल संघ ही हमारा उत्तम शरण (आश्रय) है। इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं, संघं च तिविधोत्तमं।
संघे यो खलितो दोसो, संघो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

पाप और मल से रहित, मन, वाणी और काया इन तीनों प्रकार से जो उत्तम और पवित्र संघ है। मैं उसकी नत-मस्तक होकर वंदना करता हूँ। यदि अज्ञानता वश मुझ से कोई अपराध हुआ हो तो संघ उसे क्षमा करे ॥ ४ ॥

अट्ठ विंशति बुद्ध-वंदना

वन्दे तण्हङ्करं बुद्धं, वन्दे मेधङ्करं मुनिं।
सरणङ्करं मुनिं वन्दे, दीपङ्करं जिनं नमे ॥ १ ॥
वन्दे कोण्डञ्ञ सत्थारं, वन्दे मंगल नायकं।
वन्दे सुमन सम्बुद्धं, वन्दे रेवत नायकं ॥ २ ॥
वन्दे सोभित सम्बुद्धं, अनोमदस्सिं मुनिं नमे।
वन्दे पदुम सम्बुद्धं, वन्दे नारद नायकं ॥ ३ ॥
पदुमुत्तरं मुनिं वन्दे, वन्दे सुमेध नायकं।
वन्दे सुजात सम्बुद्धं, पियदस्सिं मुनिं नमे ॥ ४ ॥
अत्थदस्सिं मुनिं वन्दे, धम्मदस्सिजिनं नमे।
वन्दे सिद्धत्थ सत्थारं, वन्दे तिस्स महामुनिं ॥ ५ ॥
वन्दे फुस्स महावीरं, वन्दे विप्पस्सि नायकं।
सिखिं महामुनिं वन्दे, वन्दे वेस्सभू नायकं ॥ ६ ॥
ककुसन्ध मुनिं वन्दे, वन्दे कोणागम नायकं।
कस्सपं सुगतं वन्दे, वन्दे गोतम महामुनिं ॥ ७ ॥
अट्ठवीसति ये बुद्धा, निब्बाण मतदायका।
नमामि सिरसा निच्चं, वीतरागा समाहिता ॥ ८ ॥

एते अञ्ञंच सम्बुद्धा, अनेक सतं कोटियो।
सब्बे बुद्धा समसमा, सब्बे बुद्धा महिद्धिका॥ ९॥
सतरंसीव उत्पन्ना, महातम विनोदना।
जलित्वा अग्गिक्खन्धोव, निब्बुता ते ससावका॥ १०॥
सब्बे दस बलूपेता, वेसारज्जे हुपागता।
सब्बे ते पटि जानन्ति, आस भट्ठान मुत्तमं॥ ११॥
सिंहनादं नादन्तेते, परिसासु बिसारदा।
ब्रह्म चक्कं पवत्तेन्ति, लोके अप्पटिवत्तियं॥ १२॥
उपेता बुद्ध धम्मेहि, अट्ठरसे हि नायका।
बत्तिंस लक्खणु पेतासीत्यानु ब्यंजन धरा॥ १३॥
ब्यामप्पभाय सुप्पभा, सब्बेते मुनि कुञ्जरा।
बुद्धा सब्बञ्ञुना एते सब्बे खीणासवा जिना॥ १४॥
महप्पभा महातेजा महापञ्ञा महब्बला।
महाकारुणिका धीरा, सब्बेसानं सुखावहा॥ १५॥
दीपा नाथा पतिट्ठाता च ताणा लेना च पाणिनं।
गती बन्धु महस्सासा, सरणं च हिते सिनो॥ १६॥
सदेवकस्स लोकस्स सब्बे एते परायणा।
ते साहं सिरसा पादे, वन्दामि पुरिसुत्तमे॥ १७॥
वचसा मनसा चेव वन्दामेते तथागते।
सयने आसने ठाने, गमने चापि सब्बदा॥ १८॥
तेसं सच्चेन सीलेन, खन्ती मेत्ता बलेन च।
तेपि सब्बेनु रक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥ १९॥

तह्णांकर बुद्ध को वंदना, मेधांकर बुद्ध को वंदना, शरणंकर बुद्ध को वंदना, दीपंकर बुद्ध को वंदना॥ १॥

कोण्डञ्ञ बुद्ध को वंदना, मंगल नामक बुद्ध को वंदना, सुमन सम्बुद्ध को वंदना, रेवत नामक बुद्ध को वंदना॥ २॥

शोभित सम्बुद्ध को वंदना, अनोमदस्सी बुद्ध को वंदना, पद्म सम्बुद्ध को वंदना, नारद नामक बुद्ध को वंदना ॥ ३ ॥

पद्मोत्तर बुद्ध को वंदना, सुमेध नामक बुद्ध को वंदना, सुजात सम्बुद्ध वंदना, प्रियदर्शी बुद्ध को वंदना ॥ ४ ॥

अर्थदर्शी बुद्ध को वंदना, धर्मदर्शी बुद्ध को वंदना, सिद्धार्थ बुद्ध को वंदना, तिष्य बुद्ध को वंदना ॥ ५ ॥

फुस्स सम्बुद्ध को वंदना, विपश्यी बुद्ध को वंदना, सिखि सम्बुद्ध को वंदना, वेस्सभू बुद्ध को वंदना ॥ ६ ॥

ककुसंध बुद्ध को वंदना, कोणागम बुद्ध को वंदना, कश्यप बुद्ध को वंदना और गौतम बुद्ध को वंदना है ॥ ७ ॥

ये अट्ठाइसों बुद्ध जो निर्वाणामृत के दानकारी, वीतराग और समाहित हैं, मैं उनको नत मस्तक होकर नित्य वंदना करता हूँ ॥ ८ ॥

ये और इनके अतिरिक्त (बुद्ध-परंपरा में) जो करोड़ों बुद्ध हुए हैं और जो होंगे, वे सब असम-सम और महाऋद्धि सम्पन्न होते हैं अर्थात् भिन्न भिन्न समय, स्थान, गोत्र तथा वंश में जन्म होने के कारण असमता रहने पर भी सब बराबर और अलौकिक दिव्य शक्तियों से पूर्ण होते हैं ॥ ९ ॥

ये बुद्ध गण महा अंधकार को नाश करते हुए सूर्य की रश्मियों की तरह उत्पन्न होते और अग्निपुञ्ज की तरह जलकर अपने शिष्यों (श्रावकों) सहित निर्वाण को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ये सब बुद्ध, दस बुद्ध बलों को धारण करने वाले और चार वैशारद्यों अर्थात् चार अद्वितीय पारदर्शिताओं से विभूषित तथा परमार्षभ अर्थात् सर्वोत्तम पद प्राप्त किये होते हैं ॥ ११ ॥

ये लोग विशारद परिषद् अर्थात् विद्वानों की सभा में सिंहनाद पूर्वक घोषणा करते हैं तथा लोक में अप्रवर्तित ब्रह्मचक्र (धर्मचक्र) को प्रवर्तन करते हैं ॥ १२ ॥

ये सब बुद्ध लोग अठारह बुद्ध गुणों से युक्त तथा महापुरुषों के बत्तीस प्रकार के शारीरिक लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों (चिह्नों) से विभूषित होते हैं ॥ १३ ॥

ये सब मुनि कुंजर व्याम-प्रभा से सुप्रभावांवित, सर्वज्ञ, बुद्ध और आश्रव-रहित जिन होते हैं ॥ १४ ॥

ये सब बुद्ध-प्रभा, तेज और बल से पूर्ण तथा महाकारुणिक, धैर्य शक्ति-सम्पन्न और सबके सुख-संस्थापक होते हैं ॥ १५ ॥

ये सब भव सागर में भासमान जीवों के लिए द्वीप स्वरूप तथा अनाथों के नाथ, अप्रतिष्ठितों की प्रतिष्ठा, त्राण हीनों के त्राण, आलयहीनों के आलय, अगतियों के गति, बंधुहीनों के बंधु, नैराश्यों की आशा, अशरणों के शरण और सबके हितकारी होते हैं ॥ १६ ॥

ये सब बुद्ध देवता और मनुष्यादि सब लोगों के परम आश्रय हैं। मैं इन सब पुरुषोत्तमों के श्री पाद-पद्मों में नत मस्तक होकर वंदना करता हूँ ॥ १७ ॥

सोते, बैठते, चलते और खड़े रहते हर समय मैं अपने मन, वाणी और काया से इन सब बुद्धों की वंदना करता हूँ ॥ १८ ॥

इन बुद्धों के प्रभाव से तथा इनके सत्य, शील, क्षमा और मैत्री आदि सद्गुणों के प्रभाव से सब लोगों का कल्याण हो, सब निरुज और सुखी हों ॥ १९ ॥

वंदना निट्ठिता

भावना परिच्छेद

दानं ददन्तु सद्धाय,
सीलं रक्खन्तु सब्बदा ।
भावना भिरता होन्तु,
एतं बुद्धानु सासनं ॥

श्रद्धा पूर्वक दान करो, सर्वदा शील का पालन करो और भावना (ध्यान) में रत रहो । यही बुद्धों की शिक्षा है ।

बौद्ध शास्त्रों में भिन्न-भिन्न साधकों के लिये चालीस (४०) प्रकार के कम्मट्ठान (कर्मस्थान) भावनाओं का वर्णन है। भावना कहते हैं ध्यान को । कर्मस्थान अभ्यास के आलंबन का नाम है । किसी आलबंन पर ध्यान या भावना का अभ्यास कम्मट्ठान (कर्मस्थान) भावना कहलाता है । ४० भावनाओं में से ब्रह्म विहार भावना सर्वोपयोगी समझ कर यहाँ दी जाती है । बाकी कर्मस्थान भावना की शिक्षा आचार्य द्वारा ग्रहण करनी चाहिये ।

ब्रह्म विहार भावना

ब्रह्म या ब्रह्मा लोग जिस भावना या ध्यान में विहार करते हैं, उसे 'ब्रह्म विहार भावना' कहते हैं । ब्रह्म या ब्रह्मा के समान जो लोग भावना या ध्यान में लीन रहते हैं, उनको ब्रह्मभूत, ब्रह्म विहारी या ब्रह्मचारी कहते हैं ।

यह भावना (ध्यान) चार प्रकार की है (१) मैत्री, (२) करुणा, (३) मुदिता और (४) उपेक्षा ।

(१) मैत्री भावना भी चार प्रकार की है —

(क) सब्बे सत्ता अवेरा होन्तु—सब प्राणी शत्रु रहित हों ।

(ख) सब्बे सत्ता अव्यापज्जा होन्तु—सब प्राणी विपद् रहित हों।

(ग) सब्बे सत्ता अनिघा होन्तु—सब प्राणी रोग-रहित हों।

(घ) सब्बे सत्ता सुखी अत्तानं परिहरंतु—सब प्राणी सुख से रहें।

(२) करुणा भावना एक प्रकार की है :—

सब्बे सत्ता दुक्खा मुच्चन्तु—सब प्राणी दुख रहित हों।

(३) मुदिता भावना एक प्रकार की है :—

सब्बे सत्ता यथा लद्धा सम्पत्तितोमाविगच्छन्तु—सब प्राणी अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सुख से वंचित न हों।

(४) अपेक्षा भावना एक प्रकार की है :—

सब्बे सत्ता कम्मस्सका—सब प्राणियों का अपना शुभाशुभ कर्म ही सच्चा साथी है, दूसरा कोई नहीं।

विधि :—पद्मासन लगाकर या साधारण पलथी मारकर जिस तरह सुख पूर्वक बैठ सकें, बैठना चाहिए तथा शरीर और गर्दन को बिलकुल सीधा रखना चाहिए तब अपने और सबके कल्याण के लिए नीचे लिखे अनुसार भावनाओं तथा ध्यानों को सावधान होकर अच्छी तरह करना चाहिये।

अहम् अवेरो होमि अव्यापज्जो होमि,
अनिघो होमि सुखी अत्तानं परिहरामि।
अहंविय मय्हं आचरियुपज्झाया,
माता पितरो हित सत्ता मज्झत्तिक सत्ता।
वेरी सत्ता अवेरा होन्तु अव्यापज्जा होन्तु,
अनिघा होन्तु सुखी अत्तानं परिहरन्तु।
दुक्खा मुच्चन्तु यथा लद्ध सम्पत्तितो,
मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥ १ ॥

इन शत्रु, विपद् और रोग आदि से रहित हो सुख से वास करें।

हमारी ही तरह आचार्य, उपाध्याय, माता-पिता, मित्रगण, मध्यस्थ और शत्रु लोग भी शत्रु विपद् एवं रोग-विहीन हों, सुख पूर्वक रहें और दुःख से छूट जाँय तथा अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से वंचित न हों। शुभाशुभ कर्म ही सब जीवों का अपना सच्चा साथी है, इसके सिवाय और कोई नहीं ॥ १ ॥

इमस्मिं ठाने इमस्मिं गोचर गामे इमस्मिं नगरे।
इमस्मिं देसे इमस्मिं जम्बूद्वीपे इमस्मिं पठवियं॥
इमस्मिं चक्कवाले इस्सरजना सीमट्ठक देवता सब्बे।
सत्ता अवेरा होन्तु, अब्यापज्जा होन्तु अनिघा होन्तु॥
सुखी अत्तानं परिहरन्तु दुक्खामुच्चन्तु यथा लद्ध।
सम्पत्तितो मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥ २ ॥

हमारे इस स्थान के, इस बस्ती के, इस नगर के, इस देश के, इस जम्बूद्वीप के, इस पृथ्वी के, इस चक्रवाल अर्थात् सौर जगत् के ऐश्वर्यशाली गण, सीमास्थ देवता गण एवं समस्त प्राणी गण शत्रु, विपद्, रोग और दुःख से छूट जाँय तथा अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से वंचित न हों। इस जगत् में सब प्राणियों का अपना शुभाशुभ कर्म ही सच्चा साथी है ॥ २ ॥

पुरत्थिमाय दिसाय दक्खिनाय दिसाय।
पच्छिमाय दिसाय उत्तराय दिसाय॥
पुरत्थिमाय अनुदिसाय दक्खिनाय अनुदिसाय।
पच्छिमाय अनुदिसाय उत्तराय अनुदिसाय॥
हेट्ठिमाय दिसाय उपरिमाय दिसाय।
सब्बे सत्ता सब्बे पाणा, सब्बेभूता सब्बे पुग्गला॥
सब्बे अत्तभाव परियपन्ना सब्बा इत्थियो सब्बे पुरिसा।
सब्बे अरिया सब्बे अनरिया सब्बे देवा सब्बे मनुस्सा॥
सब्बे अमनुस्सा सब्बे विनपातिका अवेरा होन्तु॥

अव्यापज्जा होन्तु अनीघा होन्तु सुखी अत्तानं परिहरन्तु दुक्खा मुच्चन्तु यथालद्ध सम्पत्तितो मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥ ३ ॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, नीचे, ऊपर, इन दसों दिशाओं में वास करने वाले सत्व, प्राणी भूत, पद्गल, देहधारी, ये पाँच नामान्तर पुद्गल (व्यक्ति) गण तथा स्त्री-पुरुष, आर्य-अनार्य, देवता, मनुष्य, अमनुष्य, विनिपातिक (नारकीय प्राणीगण) ये आठ प्रकारान्त पुद्गल (व्यक्ति) गण ये सब शत्रु, विपद्, रोग रहित हों, सुख से वास करें और दुःख से छूट जाँय तथा अपने सत्कर्म द्वारा लब्ध सम्पत्ति से वंचित न हों। इस जगत् में शुभाशुभ कर्म ही अपना सच्चा साथी है ॥ ३ ॥

यं दुन्निमित्तं अवमंगलं च,
यो चा मनापो सकुणस्स सद्दो।
पापग्गहो दुस्सुपिनं अकन्तं,
बुद्धानुभावेन विनास मेन्तु।
धम्मानु भावेन विनासमेन्तु,
सङ्घानुभावेन विनासमेन्तु ॥ ४ ॥

जो कुछ दुर्निमित्त, अमंगल, अशकुन, पशु-पक्षियों का शब्द, पाप-ग्रह और भयानक दुःस्वप्न हैं, वे सब भगवान बुद्ध के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों। धर्म के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों और संघ के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

पुरत्थिमस्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥
दक्खिनास्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥
पच्छिमस्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥

उत्तरस्मिं दिसाभागे, सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
पुरत्थिमेन धतरट्ठो दक्खिणेन विरुल्हको।
पच्छिमेन विरुपक्खो कुवेरो उत्तरं दिसं।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन चाति॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में महाप्रभावशाली देवता लोग वास करते हैं; वे लोग सब प्राणियों की रक्षा करें और सब लोग आरोग्य तथा सुख से रहें।

सुमेरु के पूर्व ओर धृतराष्ट्र, दक्षिण ओर विरुढ़क, पश्चिम ओर विरूपाक्ष और उत्तर ओर कुबेर नाम के चार महायशस्वी लोकपाल महाराजिक देवतागण वास करते हैं; वे लोग भी सब प्राणियों की रक्षा करें और सब लोग आरोग्य तथा सुख से रहें।

आकसिट्ठा च भूमट्ठा देवानागा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
इद्धिमन्तो च ये देवा वसंता इध सासने।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥

महादिव्य शक्ति सम्पन्न आकाशवासी एवं भूमिवासी देवगण और नागगण तथा महादिव्य-शक्ति-सम्पन्न देवगण जो इस शासन में वास करते हैं, वे लोग भी सब प्राणियों की रक्षा करें तथा सब लोग निरोग और सुखी रहें।

दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा भयप्पत्ता च निब्भया;
सोकप्पत्ता च निस्सोका होन्तु सब्बेपि पाणिनो।
मेघो वस्सतु कालेन सस्स सम्पत्ति होतु च;
फीतो भवतु लोकोच राजा भवतु धम्मिको।
सब्बेसु चक्कवालेसु यक्खा देवा च ब्रह्मानो;
यं अम्हे हि कतं पुञ्ञं सब्ब सम्पत्ति साधकं।

सब्बे तं अनुमोदित्वा समग्गा सासनरता;
पमाद रहिता होन्तु आरक्खासु विसेसतो।

सब दुःखित प्राणी दुख से रहित हों, भयभीत प्राणी भय से रहित हों और शोकग्रसित प्राणी शोक से रहित हों।

उचित समय पर मेघ जल बरसावें, धान्य और सम्पत्तियों से धरणी परिपूर्ण हों। सब प्रकार से जगत् समृद्धिशाली हो एवं राजा धार्मिक हों।

हमारे द्वारा सर्व सम्पत्तिदायक पुण्य जो सम्पादित हुए हैं, उन पुण्यों को समस्त चक्रवाल वासी देवता, यक्ष और ब्रह्मागण अनुमोदन करके एकता बद्ध होकर बुद्ध शासन में रत हों तथा प्रमाद-रहित होकर विशेष-रूप से रक्षा कार्यों में सतर्क हों।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु मा कञ्चि दुक्खमागमा॥

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें, सब कल्याण कर दृष्टि से देखें, किसी को कोई दुःख न हो।

ब्रह्म विहार भावना निट्ठिता।

परित्राण परिच्छेद

परित्राण प्रार्थना मंत्र

विपत्ति पटिबाहाय, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया।
सब्ब रोग विनासाय, भवे दीघायु दायकं॥
सब्ब दुक्ख विनासाय, भवे निब्बाण सन्तिके।
भन्ते अनुग्गहं कत्वा परित्तं ब्रथ मंगलं॥

साधारण देवता आमंत्रण-मंत्र

समन्त चक्क वालेसु अत्रागच्छन्तु देवता।
सद्धम्मं मुनि राजस्स, सुणन्तु सग्गमोक्खदं॥
धम्म-सवण-कालो अयं भदन्ता। (तीन बार)

हे समस्त चक्रवाल वासी देवगण! आप लोग यहाँ आइए और मुनिराज भगवान् बुद्ध के स्वर्ग और मोक्षप्रद सत्य धर्म का श्रवण कीजिये। हे माननीय देवगण! आप लोगों के धर्म सुनने का यह उपयुक्त समय है।

विशेष देवता आमंत्रण-मंत्र

ये सन्ता सन्त चित्ता तिसरण-सरणा एत्थ लोकंतरे वा
भुम्मा भुम्मा च देवा गुण गण गहण ब्यावता सब्ब कालं।
एते आयन्तु देवा, वरकनकमये मेरु राजे वसन्तो,
सन्तो सन्तो सहेतुं मुनिवर वचनं सोतुमग्गं समग्गं॥

यहाँ या किसी लोकान्तर, भूमि या आकाश अथवा सुवर्णमय श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत पर वास करने वाले शान्त प्रकृति और शान्त चित्त,

निथरण-शरणागत तथा सर्वदा पुण्य कार्यों में लगे हुये जो सब देवता लोग हैं, वे सब परम सन्तोष और शान्ति-प्रद भगवान् बुद्ध के वाक्यों को श्रवण करने के लिये पधारें।

देवताओं को पुण्यदान और रक्षा की प्रार्थना

सब्बेसु चक्क वालेसु, यक्खा देवा च ब्रह्मानो।
यं अह्मे हि कतं पुञ्ञं, सब्ब सम्पत्ति साधकं॥
सब्बे तं अनुमोदित्वा, समग्गा सासन रता।
पमाद रहिता होन्तु, आरक्खासु विसेसतो॥

सर्व सम्पत्ति दायक पुण्य जो हमारे द्वारा सम्पादित हुये हैं, उन पुण्यों को समस्त चक्रवाल वासी देवता, यक्ष और ब्रह्मागण अनुमोदन करके एकताबद्ध और बुद्ध शासन-रत हों तथा प्रमाद रहित होकर विशेष रूप से रक्षा कार्यों में सतर्क हों।

बुद्ध शासन की उन्नति तथा सबके हित और रक्षा की कामना

सासनस्स च लोकस्स, वुड्ढि भवतु सब्बदा।
सासनम्पि च लोकं च, देवा रक्खन्तु सब्बदा॥
सद्धिं होन्तु सुखी सब्बे, परिवारे हि अत्तनो।
अनीघा सुमना होन्तु, सह सब्बेहि ञातीभि॥

धर्म और जगत् की सर्वदा श्री वृद्धि हो। देवतागण, धर्म और जगत् की सर्वदा रक्षा करें। सब कोई अपने अपने परिवार और ज्ञाति वर्ग के सहित शारीरिक और मानसिक सुख लाभ करें और सब प्रकार के दुःख से रहित हों।

राजतो वा, चोरतो वा, मनुस्सतो वा अमनुस्सतो वा, अग्गियतो वा, उदकतो वा, पिसाचतो वा, खानुकतो वा, कण्टकतो वा, नक्खत्ततो वा, जनपद रोगतो वा, असद्धम्मतो वा,

असन्दिट्ठितो वा, असप्पुरिसतो वा, चण्ड-हत्थि अस्स मिग-गोन कुक्कुर-अहि-विच्छिक-मणिसप्पि-दीपि-अच्छ-तरच्छ-सूकर-महिसं-यक्ख रक्ख सादीहि नाना भयतो वा, नाना रोगतो वा, नाना उपद्दवतो वा, सब्बे आरक्खं गह्न्तु।

राजभय, चोरभय, मनुष्यभय, अमनुष्यभय, अग्निभय, जलभय, पिशाच भय, गोंजाभय, कंटक भय, नक्षत्रभय, विशूचिका भय, पापभय, मिथ्या दृष्टिभय, असज्जनभय, उन्मत्त वानर, हाथी, तुरंग, हरिण, सांड़, कुत्ता, भुजंग, बिच्छू, मणिधर सर्प, व्याघ्र, उलूक, तरछू, सूकर, भैंसा, यक्ष और राक्षस इत्यादि के नाना विधि भयों से तथा नाना विधि रोगों और उपद्रवों से सबकी रक्षा हो।

करणीय मेत्त सुत्तं

(करणीय मैत्री सूत्र)

भूमिका

यस्सानुभावतो यक्खा नेव दस्सेन्ति भिंसनं।
यम्हि चेवानुयुञ्जेन्तो रतिं दिवमतिन्दितो॥ १॥
सुखं सुपति सुत्तो च पापं किंचि न पस्सात।
एवमादि गुणोपेतं परित्तं तं भणामहे॥ २॥

जिस परित्राण मंत्र के प्रभाव से यक्ष लोग भय नहीं दिखा सकते तथा भय से भीत होकर दिन रात चिंतित और निद्राहीन व्यक्ति भी सुख से सो जाता है और सोया हुआ व्यक्ति कोई दुस्स्वप्न नहीं देखता ऐसे उत्तम गुणमय भगवान बुद्ध का कहा हुआ परित्राण (रक्षा-मंत्र) कहूँगा॥ १-२॥

सूत्रारम्भ

करणीयमत्थ कुसलेन यंतं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सूजू च सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥ १ ॥

कल्याण साधन में निपुण, शान्ति पद (निर्वाण) चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह ऋजु (सरल कुटिलता-हीन) सुऋजु (अति सरल) सुवच (= मिथ्या, पिशुन, कठोर और व्यर्थ इन चार प्रकार के वाणी दोषों से रहित वचन) बोलने वाला मृदु स्वभाव का और अभिमान हीन हो ॥ १ ॥

सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥ २ ॥

सन्तुष्ट चित्त, सुभरणीय (मिताहारी), अल्पकृत्य (बहुत व्यर्थ कामों में न फँसने वाला), संलघुक वृत्ति (थोड़े में ही सन्तुष्ट), शान्त इन्द्रिय, प्रज्ञावान्, अप्रगल्भ (गम्भीर, चंचलता हीन) और जाति कुल के मिथ्याभिमान में अनासक्त हो ॥ २ ॥

न च खुद्दं समाचरे किंचि येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ३ ॥

ऐसा कोई क्षुद्र (नीच) आचरण न करे जिससे दूसरे विज्ञजन निन्दा कर सकें। (सदैव अपने मन में यह भावना करनी होगी) सब प्राणी सुखी हों। कुशल क्षेम से रहें, आत्म सुख को पावें ॥ ३ ॥

ये केचि पाणभूतऽत्थि तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
दीघा वा ये महन्ता वा मज्झिमा रस्सका अणुकथूला ॥ ४ ॥

स्थावर या जंगम, दीर्घ या महान्, मंझले या छोटे, सूक्ष्म या स्थूल जितने भी प्राणी हैं (वे सब सुखी हों) ॥ ४ ॥

दिट्ठा वा येव अदिट्ठा ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वा सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ५ ॥

जो सब प्राणी दृष्ट अर्थात् आँख से दिखाई पड़ने वाले हैं और जो अदृष्ट हैं, जो दूर वास करते हैं या निकट वास करते हैं, जो जन्म ले चुके हैं, या जो जन्म लेंगे, वे सभी प्राणी सुखी हों ॥ ५ ॥

न परो परं निकुब्बेथ नातिमञ्ञेथ कत्थचिनं कञ्चि ।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥ ६ ॥

परस्पर एक दूसरे से वंचना अर्थात् ठगी न करे, किसी की अवज्ञा न करे। क्रोध और हिंसा के वश में होकर किसी के लिए दुःख की कामना न करे ॥ ६ ॥

माता यथा नि ं पुत्तं आयुसा एक पुत्तमनुरक्खे ।
एवम्पि सब्बभूतेसु मानसम्भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥

माता जिस प्रकार अपना जीवन देकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती रहती है, उसी तरह सब प्राणियों के साथ अतुल प्रेम का बरताव करना चाहिए ॥ ७ ॥

मेत्तञ्च सब्ब लोकस्मिं मानसम्भावये अपरिमाणं ।
उद्धं अधो च तिरियं च असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥ ८ ॥

ऊपर, नीचे और बीच के सब लोक या प्राणियों के प्रति वैर विरोध और शत्रुता रहित अप्रमेय मैत्री का बरताव करे ॥ ८ ॥

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो
एतं सतिं अधिट्ठेय्य ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥ ९ ॥

खड़े, चलते, बैठते और सोते जब तक बेखबर न हो इसी स्मृति में रहे, एवं यही मैत्री-भावना करता रहे। इसी को ब्रह्म विहार (भावना) कहते हैं ॥ ९ ॥

दिट्ठिञ्च अनुपगम्म सीलवा दस्सनेन सम्पन्नो ।
कामेसु विनेय्य गेधं न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति ॥ १० ॥

शीलवान् सम्यक् दृष्टि-सम्पन्न, मिथ्यादृष्टि को न ग्रहण कर, काम वासना को दमन करके फिर दुबारा मां के गर्भ में नहीं होता ॥ १० ॥

महामंगल सुत्तं

(महामंगल सूत्र)

भूमिका

यं मंगलं द्वादस्सु चिंतयिंसु सदेवका,
सोत्थानं नाधि गच्छन्ति अट्ठतिंसंच मंगलं।
देसितं देवदेवेन सब्ब पाप विनासनं,
सब्ब लोक हितत्थाय मंगलं तं भणामहे।

जब १२ वर्ष तक देवता और मनुष्य जिस मंगल अर्थात् कल्याण की बड़ी चिन्ता करके न जान सके, तब उन लोगों पर दया करके सब प्रकार के पाप और दुःखों के विनाशक ३८ मांगलिक विधानों को देवादिदेव भगवान् बुद्ध ने उपदेश किया। उन मांगलिक विधानों को सबके हित के लिये कहता हूँ।

सूत्रारम्भ

एवं मे सुतं। *एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कंताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवल कप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि

---

*भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्य महाथेर आनन्द बौद्धों की पहली सभा के अधिवेशन के समय महाकाश्यप आदि भिक्षु संघ के सामने इस प्रकार बोले।

उपसंकमित्वा भगवंतं अभिवादेत्वा एकमंतं अट्ठासि। एकमंतं ठिता खो सा देवता भगवंतं गाथाय अज्झभासि :—

मैंने इस प्रकार सुना है कि एक समय भगवान् श्रीवस्ती नगर के निकट जेतवन नामक उद्यान में अनाथपिंडक (श्रेष्ठी) द्वारा बनवाये हुये आराम (बौद्ध-मठ) में वास कर रहे थे, उस समय एक अतिशय सुन्दर दिव्य प्रकाशमान देवता जेतवन को आलोकित करता हुआ रात्रि के अन्त में भगवान् के पास उपस्थित हो अभिवादन कर एक ओर खड़ा होकर यह गाथा बोला :—

बहू देवा मनुस्सा च मंगलानि अचिन्तयुं।
आकङ्खमाना सोत्थानं ब्रूहि मंगलमुत्तमं ॥ १ ॥

इस लोक और परलोक में सुख पाने की आशा से कितने ही देवता और मनुष्यों ने बड़ी चिन्ता की किन्तु किस प्रकार से मंगल अर्थात कल्याण प्राप्त होगा, वे यह निश्चय न कर सके। अतएव आप कृपा करके उत्तम मंगल प्राप्ति के उपाय को कहिए।

इस प्रकार उस देवता के प्रार्थना करने पर भगवान् बुद्ध बोले—

असेवना च बालानं पंडितानञ्च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं ॥ २ ॥

मूर्ख लोगों का संग न करना, विद्वानों का सत्संग करना तथा पूजनीय व्यक्तियों की पूजा करना उत्तम मंगल है।

पतिरूपदेसवासो च पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च एतं मंगलमुत्तमं ॥ ३ ॥

उपयुक्त देश में वास, पुण्याचरण और (अपने मन में) सम्यक्-प्रणिधान या शुभ-संकल्प करना उत्तम मंगल है ॥ ३ ॥

बाहु सच्चञ्च सिप्पञ्च विनयो च सुसिक्खितो ।
सुभासिता च या वाचा एतं मंगलमुत्तमं ॥ ४ ॥

बहुश्रुत होना (शास्त्रों का खूब ज्ञान होना), शिल्प-विद्याओं का जानना, विनय (चरित गठन) में सुन्दर रूप से शिक्षित होना और सुन्दर वचन बोलना, उत्तम मंगल है ॥ ४ ॥

माता-पितु उपट्ठानं पुत्तदारस्स संगहो ।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मंगलमुत्तमं ॥ ५ ॥

माता-पिता की सेवा करना, स्त्री-पुत्रों का पालन-पोषण करना और पाप-रहित व्यवसाय करना उत्तम मंगल है ॥ ५ ॥

दानञ्च धम्मचरिया च ञातकानंच संगहो ।
अनवज्जानि कम्मानि एतं मंगलमुत्तमं ॥ ६ ॥

दान देना (काय, वचन और मन से), धर्म का आचरण करना, अपने कुटुम्ब वालों का पालन करना और निर्दोष कर्मों का करना उत्तम मंगल है ॥ ६ ॥

आरति विरति पापा मज्जपाना च सञ्ञमो ।
अप्पमादो च धम्मेसु एतं मंगलमुत्तमं ॥ ७ ॥

(मानसिक पापों में) अरति (अनासक्ति), शारीरिक और वाचनिक पापों में विरति (= परित्याग), मद्यादि पान में संयम अर्थात् मदिरा, भाँग, गाँजा आदि नशे की वस्तुओं से बचना, धर्म में प्रमाद न करना उत्तम मंगल है ॥ ७ ॥

गारवो च निवातो च संतुट्ठी च कतञ्ञुता ।
कालेन धम्मसवणं एतं मंगलमुत्तमं ॥ ८ ॥

(पूजनीय व्यक्तियों में) गौरव रखना और (उन लोगों के निकट) विनीत रहना, सदा सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञता अर्थात् कोई अपने

साथ कुछ उपकार करे, तो उसका ख्याल रखना तथा उचित समय से धर्म का सुनना उत्तम मंगल है ॥ ८ ॥

खंती च सोवचस्सता समणानञ्च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छा एतं मंगलमुत्तमं ॥ ९ ॥

क्षमाशील होना, गुरुजनों के आदेश का पालन करना, श्रमणों (महात्माओं) के दर्शन करना और यथा समय धर्म-चर्चा करना उत्तम मंगल है ॥ ९ ॥

तपो च ब्रह्मचरियञ्च अरियसच्चान दस्सनं।
निब्बाणसच्छिकिरिया च एतं मंगलमुत्तमं ॥ १० ॥

तपस्या (शुभ कर्मों के लिये कष्ट करना) ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्य-सत्य अर्थात् दुःख, दुःख का कारण, दुःख-निरोध और दुःख निरोध के उपायों का प्रत्यक्ष करना और निर्वाण का साक्षात्कार करना उत्तम मंगल है ॥ १० ॥

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्तं यस्स न कंपति।
असोकं विरजं खेमं एतं मंगलमुत्तमं ॥ ११ ॥

लाभ-अलाभ, यश-अपयश, निन्दा-प्रशंसा और सुख-दुःख इन आठ प्रकार के लोक धर्मों के द्वारा चित्त का विचलित न होना तथा शोक-रहित होना, राग, द्वेष और मोह रूपी रज से रहित होना और क्षेम सहित होना उत्तम मंगल है।

एतादिसानि कत्वान सब्बत्थमपराजिता।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मंगलमुत्तमंति ॥ १२ ॥

ऊपर जिन अड़तीस मंगल कर्मों की बात कही गई है उनसे सर्वत्र जय और मंगल प्राप्त होता है। यही सब देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्तम मंगल है।

पराभव सुत्तं

(पराभव सूत्र)

सूत्रारम्भ

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसंकमि। उपसंकमित्वा भगवंतं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमंतं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि :—

मैंने ऐसा सुना है कि एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती नगर में अनाथपिंडिक सेठ के जेतवन-विहार में विहार करते थे। उस समय आधी रात बीत जाने के बाद किसी एक देवता ने अपने अत्यन्त दिव्य वर्ण द्वारा सम्पूर्ण जेतवन को सुशोभित करते हुये जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन करके एक स्थान पर बैठ कर (इस) गाथा द्वारा भगवान् से कहा :—

पराभवन्तं पुरिसं मयं पुच्छाम गोतमं।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, किं पराभवतो मुखं ॥ १ ॥

हे गोतम! हम आपसे पूछने के लिए आये हैं, सो हे भगवन्! हम आपसे पूछते हैं कि) दोनों लोकों अर्थात् इह लोक और परलोक से) पराभव (पतन, गिरावट) को प्राप्त हुये मनुष्यों के पराभव (पतन) का कारण क्या है ? ॥ १ ॥

इस प्रकार देवता के प्रार्थना करने पर भगवान् बोलेः—

सुविजानो भवं होति अविजानो पराभवो।
धम्मकामो भवं होति धम्मदेस्सि पराभवो ॥ २ ॥

(हमारे उपदेश किये धर्म को) अच्छी तरह से जानने वालों की (दोनों लोकों में) वृद्धि होती है और न जाननेवालों का पराभव (विनाश, पतन व गिरावट) । धर्म की कामना करने वालों की बृद्धि और उससे द्वेष करने वालों का पराभव (विनाश) होता है ॥ २ ॥

असन्तस्स पिया होन्ति सन्ते न कुरुते पियं।
असतं धम्मं रोचेति तं पराभवतो मुखं ॥ ३ ॥

दुष्टों से प्रेम, सज्जनों से द्वेष तथा दुष्टों के आचारण में रुचि पराभव का मुख्य कारण है ॥ ३ ॥

निद्दासीली सभासीली अनुट्ठाता च यो नरो।
अलसो कोधपञ्ञाणो तं पराभवतो मुखं ॥ ४ ॥

जो अधिक सोनेवाला, बुरी संगत में बैठने वाला, उत्साह रहित, आलसी और क्रोधी है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ४ ॥

यो मातरं वा पितरं वा जिण्णकं गत योब्बनं।
पहु सन्तो न भरति तं पराभवतो मुखं ॥ ५ ॥

जो मनुष्य सामर्थ्य होने पर भी अपने वृद्ध और दुर्बल माता पिता का भरण पोषण नहीं करता, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ५ ॥

यो समणं वा ब्राह्मणं वा अञ्ञं वापि वणिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति तं पराभवतो मुखं ॥ ६ ॥

(देने की सामर्थ्य होने पर भी) जो श्रमण-ब्राह्मण या अन्य किसी याचक को झूठ बोलकर टालता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ६ ॥

पहूतवित्तो पुरिसो सहिरञ्ञो सभोजनो।
एको भुञ्जति सादूनि तं पराभवतो मुखं ॥ ७ ॥

बहुत धन, सुवर्ण और उत्तम भोजन के पदार्थ होते हुए भी जो पुरुष अकेला स्वाद की वस्तुओं का भोग करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ७ ॥

जातित्थद्धो धनत्थद्धो गोत्तत्थद्धो च यो नरो।
सं ञातिं अतिमञ्ञेति तं पराभवतो मुखं ॥ ८ ॥

जो मनुष्य अपने जाति, धन और गोत्र के अत्यन्त अहंकार से अपने दूसरे भाई का अपमान करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ८ ॥

इत्थिधुत्तो सुराधुत्तो अक्खधुत्तो च यो नरो।
लद्धं लद्धं विनासेति तं पराभवतो मुखं ॥ ९ ॥

जो मनुष्य स्त्री लंपट और मद्य (भाँग, गांजा, अफीम इत्यादि नशों के) पीने में तथा जुए इत्यादि के खेल में निरत रहता है और जो अपनी कमाई को व्यर्थ नष्ट करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ९ ॥

सेहि दारेहि असन्तुट्ठो वेसियासु पदिस्सति।
दिस्सति परदारेसु तं पराभवतो मुखं ॥ १० ॥

जो पुरुष अपनी स्त्री से सन्तोष न करके वेश्याओं में रमण करता है तथा पराई स्त्रियों को दूषित करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १० ॥

अतीतयोब्बनो पोसो आनेति तिम्बरुत्थनिं।
तस्सा इस्सा न सुपति तं पराभवतो मुखं ॥ ११ ॥

जो मनुष्य गत यौवन अर्थात् वृद्धावस्था में छोटी आयु वाली कन्या से विवाह करता है, तो वह ईर्ष्या (जलन) से सुख की नींद नहीं सो सकता, यह भी उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ११ ॥

इत्थिसोण्डिं विकिरणिं पुरिसं वापि तादिसं।
इस्सरियस्मिं ठापेति तं पराभवतो मुखं ॥१२॥

जो असावधान और बिगड़ैल स्त्री वा पुरुष को (सम्पति का) मालिक बनाता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १२ ॥

अप्पभोगो महातण्हो खत्तिये जायते कुले।
सो च रज्जं पत्थयति तं पराभवतो मुखं ॥१३॥

जो क्षत्रिय (आदि उच्च) कुल (घरानो) में उत्पन्न होने के कारण, धनहीन होने पर भी गरीबी से बसर नहीं करता, बल्कि बहुत लालच और राज्य पाने की इच्छा करता है, तो वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १३ ॥

एते पराभवे लोके पण्डितो समवेक्खिय।
अरियो दस्सन सम्पन्नो स लोकं भजते सिवंति ॥ १४ ॥

दर्शन से युक्त पंडित आर्य-पुरुष अवनति इन पराभवों (श्रेष्ठ तत्व-ज्ञान) से सम्पन्न होते हैं, वे परम कल्याण शान्ति को प्राप्त कर सुख-पूर्वक संसार में रहते हैं ॥ १४ ॥

रतन सुत्तं

(रत्न सूत्र)

भूमिका

पणिधानतो पट्ठाय तथागतस्स दस पारमियो, दस उपपार-मियो, दस परमत्थ पारमियोति समतिंस पारमियो, पंचमहापरि च्चागे, लोकत्थचरियं, ञातत्थचरियं, बुद्धत्थ चरियंति तिस्सो चरियायो, पच्छिमभावे गब्भोक्कंतिं, जातिं, अभिनिक्खमनं,

पधान चरियं, बोधिपल्लंके मार विजयं, सब्बञ्ञुता ञानपटिवेधं, धम्मचक्क पवत्तनं नवलोकोत्तर धम्मेति सब्बेपिमे बुद्धगुणे आवज्जेत्वा वेसालियातिसु पाकारंतरेसु तियामरत्तिं परित्तं करोन्तो आयस्मा आनदंत्थेरोविय कारुञ्ञचित्तं उपट्ठपेत्वा :—

कोटि सत सहस्सेसु चक्कवालेसु देवता।
यस्साणं पटिग्गण्हन्ति, यं च वेसालियं पुरे ॥ १ ॥
रोगा मनुस्स-दुब्भिक्ख-संभूतं तिविधंभयं।
खिप्पमंतरधापेसि, परित्तं तं भणामहे ॥ २ ॥

भगवान् गौतम बुद्ध ने अपने सुमेध तापस के जन्म में अमरावती नगर में भगवान् दीपंकर बुद्ध के चरणों में गिर कर बुद्धत्व-लाभ के लिए जो प्रार्थना की थी, उस प्रार्थना से आरम्भ करके दस पारमिता (दान, शील, नैष्कर्म्य प्रज्ञा वीर्य, क्षांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा), दस-उपपारमिता (अधम भाव से पूर्ण होने पर उपपारमिता)' दस-परमार्थ-पारमिता (उक्त दस-पारमिता उत्तम रूप से पूर्ण होने पर परमार्थ पारमिता हैं), ये तीस पारमिता, पंच-महादान, जगत का हिताचरण, अपनी ज्ञाति वालों का हिताचरण, बुद्ध होने के लिए सदाचरण, ये तीन प्रकार के आचरण, शेष जन्म (अर्थात् जिस जन्म में बुद्ध हुए थे, उस जन्म में) माता के गर्भ में प्रवेश, जन्म, संसार-त्याग कठोर तपस्या, बोधिवृक्ष के नीचे मार-विजय, सर्वज्ञता ज्ञान लाभ, धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन और नव लोकोत्तर धर्म प्रचार इत्यादि सब प्रकार के भगवान् तथागत बुद्ध के गुणों का स्मरण करके, वैशाली नगर के तीनों प्राचीरों में रात्रि-भर परित्राण (रक्षा मंत्र, रत्न-सूत्र) का पाठ करने वाले आयुष्मान् आनंद स्थविर की नाईं करुणा-पूर्ण चित्त से हम लोग भी उस रत्न सूत्र (परित्राण) का पाठ करते हैं :—

जिसके आदेश का सौ सहस्त्र कोटि चक्रवाल (भूमंडल) वासी देवता लोग प्रतिपालन करते हैं तथा जिसके प्रभाव से वैशाली नगर में

रोग, अमनुष्यकृत उपद्रव और दुर्भिक्ष से उत्पन्न होने वाले तीन तरह के दुःख और भय शीघ्र दूर हो गये ॥ १-२ ॥

सूत्र का आरम्भ

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानि व अंतलिक्खे।
सब्बे'व भूता सुमना भवन्तु,
अथोपि सक्कच्च सुणंतु भासितं ॥ १ ॥

पृथिवी पर रहने वाले और आकाश में रहने वाले जो सब देव यहाँ आये हैं, वे प्रसन्न चित हो, मेरे भाषित को सुनें ॥ १ ॥

तस्मा हि भूता निसामेथ सब्बे,
मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय।
दिवा च रत्तो च हरंति ये बलिं,
तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता ॥ २ ॥

त्रिरत्न के गुण श्रवण से उच्च गुणों का विकास होता है) इस लिये तुम सब लोग मन लगा कर सुनों और मनुष्यों से मैत्री रक्खो। लोग दिन रात तुम्हारी भेंट-पूजा करते हैं, इसलिए तुम लोग अप्रमत्त भाव से उन लोगों की रक्षा करो ॥ २ ॥

यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा,
सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतेन,
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ३ ॥

इस लोक में या परलोक में जो कुछ वित्त (धन) है, अथवा स्वर्ग लोक में जो कुछ उत्तम रत्न हैं, उनमें से कोई भी तथागत

(बुद्ध) के समान नहीं है। बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याणहो ॥ ३ ॥

खयं विरागं अमतं पणीतं,
यदज्झगा सक्यमुनी समाहितो,
न तेन धम्मेन सम'त्थि किञ्चि।
इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ४ ॥

समाहित-चित्त शाक्य-मुनि ने जिस राग-द्वेष-मोह का क्षय करके विराग और उत्तम अमृत रूप निर्वाण धर्म को जाना है, उस धर्म के समान कुछ भी नहीं है, धर्म में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥४॥

यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचिं,
समाधि मानन्तरिकञ्ञमाहु।
समाधिना तेन समो न विज्जति,
इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवित्थि होतु ॥ ५ ॥

भगवान् बुद्ध ने जिस पवित्र समाधि की प्रशंसा की है और जिसका फल अनुष्ठान (अभ्यास) के अनन्तर ही मिलता है, उसके समान कोई और दूसरी समाधि नहीं है। यही समाधि धर्म में श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ५ ॥

ये पुग्गला अट्ठसतंपसत्था,
चत्तारि एतानि युगानि होन्ति।
ते दक्खिणेय्या सुगतस्स सावका,
एतेसु दिन्नानि महाप्फलानि।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ६ ॥

जिन आठ पुद्गलों की बुद्ध ने प्रशंसा की है और जिनके मार्ग और फल के हिसाब से चार जोड़े होते हैं और वे सुगत (बुद्ध) के श्रावक (शिष्य) हैं तथा दक्षिणा (दान) के उपयुक्त पात्र हैं। इन लोगों को दान देने से महाफल लाभ होता है। श्रावक संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ६ ॥

ये सुप्प युत्ता मनसा दळ्हेन,
निक्कामिनो गोतमसासनम्हि।
ते पत्तिपत्ता अमतं विगय्ह,
लद्धा मुधा निब्बुतिं भुञ्जमाना।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ७ ॥

जो आठों पुद्गल निष्काम हैं, गौतम (बुद्ध) के शासन (धर्म) में स्थिर हैं। वे अमृत में गोता लगा कर बिना मूल्य प्राप्त निर्वाण सुख का भोग करते हैं और प्राप्तव्य-प्राप्त (जिसका पाना परम उचित है, उसे पाये हुए) हैं। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ७ ॥

यथिन्द खीलो पठविं सितो सिया,
चतुब्भि वातेहि असम्प कम्पियो।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि,
यो अरिय सच्चानि अवेच्चपस्सति।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ८ ॥

जिस प्रकार पृथिवी में दृढ़ रूप से गड़ा हुआ इंद्रखील (नगर के द्वार पर का स्तंभ) चारों ओर की वायु के वेग से नहीं हिलता, उसी प्रकार जिसने चार-आर्य-सत्य को प्रज्ञा-चक्षु के द्वारा देख लिया है, उस सत्पुरुष की मैं इन्द्रखील के साथ तुलना करता हूँ। अर्थात् वह भी

इन्द्रखील के समान अचल है। संघ में यह श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ८ ॥

(इसके आगे गाथा ९ से ११ तक स्रोतापन्न व्यक्ति का उल्लेख किया गया है।)

ये अरियसच्चानि विभावयन्ति,
गम्भीर पञ्ञेन सुदेसितानि।
किञ्चापि ते होन्ति भुसप्पमत्ता,
न ते भवं अट्ठमं आदियन्ति।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ९ ॥

गम्भीर-प्रज्ञ बुद्ध द्वारा सुन्दर रूप से उपदेश दिये हुए चार-आर्य-सत्य को जो स्वयं भली-भांति जानकर दूसरों के हित के लिये भी प्रकाश करते हैं, वह प्रमत्त होने पर भी आठवीं बार संसार में जन्म ग्रहण नहीं करते अर्थात् सात जन्म के भीतर ही मुक्ति पा जाते हैं। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ९ ॥

सहावस्स दस्सनसम्पदाय,
तयस्सु धम्मा जहिता भवन्ति।
सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छितञ्च,
सीलब्बतं वापि यदत्थि किञ्चि।
चतूहपायेहि च विप्पमुत्तो,
छ चाभिठानानि अभब्बो कातुं।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ १० ॥

स्रोतापन्न व्यक्ति को दर्शन संपद् (सम्यक्-दृष्टि) लाभ होने के साथ-साथ जो कुछ थोड़ी सत्काय-दृष्टि, सन्देह और शीलव्रत रहते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। वह चार प्रकार के अपाय (नरकों) से छूट

जाते हैं और छः प्रकार के (मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत्-हत्या, बुद्ध का रक्त पात, मित्यादृष्टि होना, एवं संघ में भेद डालना) महापाप कर्म उसके लिए असम्भव हो जाते हैं। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १० ॥

किञ्चापि सो कम्मं करोति पापकं,
कायेन वाचा उद चेतसा वा।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छादाय,
अभब्बता दिट्ठ पदस्स वुत्ता।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ११ ॥

वह स्रोतापन्न व्यक्ति काय, वाक्य और मन से कोई पाप करके छिपा नहीं सकता। कारण, सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति के पाप छिपाना असम्भव है। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ११ ॥

वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे,
गिम्हानमासे पठमस्मिं गिम्हे।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि,
निब्बाणगामिं परमं हिताय।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ १२ ॥

घने वन या पुष्प-कुञ्ज में ग्रीष्म-ऋतु के प्रथम मास में वृक्ष और लता आदि की शाखायें फूलों से युक्त जैसे शोभायमान होती हैं, उसी तरह निर्वाण, अष्ट-लोकोत्तर धर्म और सैंतीस बोधि-पाक्षिक-धर्म तथा शील, समाधि एवं प्रज्ञा रूपी पुष्प से सम्पन्न परम शोभायमान धर्म की ओर जाने वालों के हित के लिए भगवान् ने उपदेश किया है, बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य वाक्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १२ ॥

वरो वरञ्ञू वरदो वराहरो,
अनुत्तरो धम्मवरं अदेसयि।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ १३ ॥

सर्वश्रेष्ठ महापुरुष वरञ्ञू-सेना-सहित क्लेश-मार और देव पुत्र-मार को जीतकर बिना किसी गुरु के बताए हुए निर्वाण धर्म का साक्षात्कार करके चार-आर्य सत्यों को प्रकट करने वाले, वरद-सब जीवों का श्रेष्ठ निर्वाण-धर्म को देने के वाले, वराहरो-अर्हत् गुणों से विभूषित अनुत्तरो (अलौकिक-पुरुष, भगवान् बुद्ध) ने सर्वश्रेष्ठ धर्म का प्रचार किया है। बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १३ ॥

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं,
विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अविरुल्हिछन्दा,
निब्बंति धीरा यथायम्प दीपो।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ १४ ॥

अर्हतों (जीवन मुक्तों) का पुराना कर्म सब क्षीण (विनष्ट) हो जाता है और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती, पुनर्जन्म में उनकी आसक्ति नहीं है। उन लोगों के पुनर्जन्म का बीज क्षीण (नष्ट) हो गया है और उन लोगों की कोई इच्छा बाकी नहीं है, अतः ये सब धीर लोग उसी भांति निर्वाण को प्राप्त होते हैं, जैसे यह प्रदीप तेल समाप्त होने पर बुझ जाता है। संघ में यही श्रेष्ट रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १४ ॥

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे।
तथागतं देव मनुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १५ ॥

पृथ्वी और आकाश में रहने वाले जो सब प्राणी यहाँ पर इकट्ठे हुए हैं वे और हम सब मिलकर देव और मनुष्यों से पूजित तथागत बुद्ध को नमस्कार करें, जिससे सबका कल्याण हो ॥ १५ ॥

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं,
धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १६ ॥

पृथिवी और आकाश में रहने वाले सब प्राणी जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, वे और हम सब मिलकर देव और मनुष्यों से पूजित तथागत के धर्म को नमस्कार करें, जिससे सबका कल्याण हो ॥ १६ ॥

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्स पूजितं,
संघं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १७ ॥

पृथिवी और आकाश में रहने वाले सब प्राणी जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, वे और हम सब मिलकर देव और मनुष्यों से पूजित तथागत के संघ को नमस्कार करें, जिससे सबका कल्याण हो ॥ १७ ॥

जय मंगल-अट्ठगाथा

बाहुं सहस्स मभिनिम्मित सायुधन्तं,
गिरमेखलं उदित घोर ससेन मारं।
दानादि धम्म विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ॥ १ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने सुन्दर सुदृढ़ बने हुए आयुधों को धारण किये हुए सहस्र भुजा वाले और गिरि मेखल नामक हाथी पर चढ़े हुए अत्यन्त घोर सेनाओं के सहित मार (कामदेव) को

अपने दानादि धर्म के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो अर्थात् तुम लोगों को अभ्युदय और निःश्रेयस लाभ हो ।। १ ।।

मारातिरेक मभियुज्झित सब्बरत्तिं,
घोरम्पणालवकमक्खमतद्ध यक्खं ।
खन्ती सुदन्त विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ।। २ ।।

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, मार (कामदेव) के अलावा समस्त रात संग्राम करनेवाले घोर दुर्द्धर्ष और कठिन हृदय वाले आलवक नामक यक्ष के क्षान्ति (क्षमा) और सुदान्ति (अच्छी तरह से बश में किये मन) के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ।। २ ।।

नालागिरिं गजवरं अतिमत्तभूतं,
दावग्गिचक्कमसनीव : सुदारुणन्तं ।
मेतम्बुसेक विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ।। ३ ।।

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने दावाग्नि-चक्र और विद्युत के समान अति दारुण और अत्यन्त मदमत्त नालागिरि हस्ती को मैत्री-रूपी बल की वर्षा करके जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ।। ३ ।।

उक्खित्त खग्गमतिहत्थ सुदारुणन्तं,
धावन्ति योजनपथंगुलिमालवन्तं ।
इद्धीभिसंखतमानो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ।। ४ ।।

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, नालागिर हस्ती से भी अत्यन्त दारुण जो अपनी तलवार से मनुष्यों की अंगुलियों को काट काटकर माला

बनाया करता था, जिसने बुद्ध पर भी आक्रमण करने के लिये तीन योजन अर्थात् १२ कोस तक पीछा किया था उस अंगुलिमाल को भी अपनी अलौकिक और दिव्य ऋद्धि शक्ति का प्रकाश करके जीत लिया (अर्थात् उसे परम धार्मिक बना दिया), उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ४ ॥

कत्वान कट्ठमुदरं इव गब्भिनीया,
चिंचाय दुट्ठवचनं जनकाय मज्झे।
सन्तेन सोमविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ॥ ५ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, गर्भिणी की तरह ऊँचा काठ का नकली पेट बनाकर (बुद्ध को बदनाम करनेवाली) चिञ्चा नामक स्त्री के प्रचार किये हुये अपवाद को अपने शान्त और सौम्य बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ५ ॥

सच्चं विहायमतिसच्चकवादकेतुं,
वादाभिरोपितमनं अतिअंधभूतं।
पञ्ञापदीपजलितो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ६ ॥

जिन मुनीन्द्र बुद्ध ने, सत्य को छोड़े हुये असत्यवाद का पोषक और हिमायती, वाद-विवाद-परायण, अहंकार से अति अँधे हुये सच्चक नामक परिव्राजक को प्रज्ञा-प्रदीप जलाकर जीत लिया, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥६॥

नन्दोपनन्द भुजगं विबुधं महिद्धिं,
पुत्तेन थेरभुजगेन दमापयन्तो।
इद्धूपदेसविधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ॥ ७ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, विविध महाऋद्धि सम्पन्न नन्दोपनन्द नामक भुजंग को अपने पुत्र (शिष्य) महामोग्गल्लान स्थविर के द्वारा अपनी ऋद्धि-शक्ति और उपदेश के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥७॥

दुग्गाहदिट्ठिभुजगेन सुदट्ठहत्थं,
ब्रह्मं विसुद्धिजुतिमिद्धिबकाभिधानं।
ञानागदेन विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जयमंगलानि ॥ ८ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, भयानक मिथ्यादृष्टि रूपी साँप के द्वारा डसे गये विशुद्ध ज्योति और ऋद्धि-शक्ति सम्पन्न बक नामक ब्रह्मा जी को ज्ञान रूपी औषध देकर जीत लिया है, उनके प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ८ ॥

एतापि बुद्धजयमंगलअट्ठगाथा,
यो वाचको दिनेदिने सरते मतन्दि।
हित्वान नेक विविधानि चुपद्दवानि,
मोक्खं सुखं अधिगमेय्य नरो सपञ्ञो ॥ ९ ॥

जो कोई पाठक बुद्ध की इन आठ जय-मंगल गाथाओं को निरालस भाव से प्रतिदिन पाठ करेंगे, वे लोग नाना प्रकार के उपद्रवों के विनाश पूर्वक मोक्ष-सुख लाभ करेंगे।

जयमंगल अट्ठगाथा निट्ठिता।

विवाहादि संस्कार परिच्छेद

संस्कारों से जीवन सुसंस्कृत होकर ऊंचा होता है, ऐसा सुसभ्य मानव समाज का बहुत प्राचीन काल से विश्वास चला आता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के कुछ न कुछ संस्कार अर्थात् कार्यविधि प्रचलित है। अतएव, बौद्ध समाज में भी १० संस्कार होते है। यथा—(१) गर्भ-मंगल (२) नाम करण, (३) अन्नाशन, (४) केश-कल्पन, (५) कर्णवेधन, (६) विद्यारम्भ, (७) विवाह, (८) प्रव्रज्या, (९) उपसम्पदा और (१०) मृतक-संस्कार। इनमें १ से ७ पर्यन्त गृहस्थों के मांगलिक संस्कार है। ८-९ दो साधुओं के यह संस्कार और दसवाँ सब के लिए है।

नाम करण, अन्नप्राशन, विद्यारंभ आदि मांगलिक कर्म तथा पर्व-त्योहार के अनुष्ठान एवं श्राद्ध-शान्ति आदि सभी धार्मिक और सामाजिक कार्य त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण, परित्राण पाठ और यथाशक्ति दान के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।

उपरोक्त संस्कारों की विधि इस प्रकार सम्पन्न होती है—

(१) गर्भ-मंगल—यह गर्भ स्थिति के तीन मास पश्चात् अपनी सुविधानुसार किया जाता है! इसमें विद्वान् बौद्ध-भिक्षु, गर्भ-स्थित बालक के कल्याण के लिए उसकी माता को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं, परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते हैं और गर्भवती स्त्री को पथ्य के अनुकूल रहने एवं अधिक तीक्ष्ण तथा अधिक उष्ण पदार्थों के सेवन न करने और अधिक श्रम के कामों से, जिनसे कि गर्भ-विकृत अथवा गर्भ-पात का भय होता है, बचने का उपदेश करते हैं। उपदेशमें में गर्भवती को सद्भावना और सद्विचार से रहकर

बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति तथा संघानुस्मृति करते रहने का आदेश करते है। गर्भवती से कहते हैं कि वह अपने मन में चिंतन करे कि हमारी संतान सुन्दर, सौम्य, यशस्वी, बल-वीर्य-सम्पन्न, न्यायनिष्ठ, धार्मिक, विद्वान और प्रज्ञावन हो। इस प्रकार आचार्य का उपदेश और उनकी सेवा-सत्कार हो जाने के बाद उस दिन गृहस्थ अपने परिवार और इष्टमित्रों के साथ प्रीति-भोजन करता है। स्त्रियां पिष्टक अथवा गुलगुले का भोजन करती हैं और गा-बजाकर आमोद-प्रमोद के साथ इस मांगलिक संस्कार को सम्पन्न करती हैं।

(२) नामकरण—यह जन्म के पांचवें दिन होता है। उस दिन प्रसूता स्नान करती है और प्रसव-गृह साफ़-सुथरा किया जाता है। विद्वान् बौद्ध-भिक्षु आकर प्रसूता एवं उसके उपस्थित कुटुम्बियों को त्रिशरण सहित पंचशील देते और परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते हैं। इसके पश्चात् बच्चे का नामकरण करते हैं। विद्वान् बौद्ध-भिक्षु विचार पूर्वक ऐसा नाम रखते हैं जो प्रज्ञा, प्रतिभा, ओज वीर्य, करुणा, मैत्री, औदार्य आदि सद्गुणों का द्योतक होता है। वे लोग मानव-समाज में ऊँच-नीच के भेद-भाव की सृष्टि करने वाले शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास आदि प्रत्यय नामों के संग नहीं लगाया करते और न बच्चे के जीने के मोह से अल्पज्ञों की भाँति घसीटू, घुरहू, पनारू घिनहू इत्यादि तुच्छता और घृणा सूचक नाम रखने की अनुमति ही देते हैं। नामकरण होने के पश्चात् आचार्य प्रसूता को बच्चे के लालन पालन के सम्बन्ध में समुचित शिक्षा देते हैं। सेवा सत्कार पूर्वक आचार्य के विदा हो जाने पर गृहस्थ अपने परिवार और इष्ट-मित्रों के साथ प्रीति-भोजन करते हैं तथा स्त्रियां गीत-वाद्य आदि के साथ आमोद, प्रमोद के द्वारा इस मांगलिक संस्कार का आनन्द मनाती हैं।

(३) अन्नाशन—यह जन्म के पाँचवें महीने में सुविधा के अनुसार किया जाता है। विद्वान बौद्ध-भिक्षु आते हैं और बच्चा व बच्चे की माता नवीन वस्त्र धारण करके अपने परिवार के सहित

त्रिशरण पंचशील ग्रहण करती एवं परित्राण सूत्रों का पाठ सुनती है। आज के दिन खीर से बुद्ध-पूजा होती है और भिक्षु को भी खीर-भोजन कराया जाता है। इसके पश्चात् आचार्य के आदेश से मांगलिक गीत-वाद्य, उलुध्वनि, शंखध्वनि आदि के साथ बच्चे का कोई गुरुजन अपनी अवस्थानुसार धातु आदि की नवीन कटोरी में खीर रख कर नवीन चम्मच से "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स" कहते हुए बच्चे को खीर चटाते हैं। आचार्य के विदा होने पर परिवार के सब लोग प्रीति भोजन करते हैं और गा-बजाकर आनन्दोत्सव मनाते हैं। इसी दिन मध्यान्होत्तर-काल में बच्चे को किसी निकटवर्ती बुद्ध-विहार में ले जाकर बुद्ध का दर्शन कराते और धूप-दीप आदि से बुद्ध की पूजा करते हैं।

(४) **केश-कल्पन**—बच्चे के गर्भ के बाल उतारने का यह मांगलिक कृत्य अन्नाशन के पश्चात् उसके जन्म से तीन साल के भीतर अपनी सुविधानुसार किया जाता है। यह कृत्य किसी बुद्ध-विहार में अथवा घर में ही होता है। पहले बौद्ध-भिक्षु अच्छे शुद्ध छुरे से बच्चे के दो-चार बाल काट देते हैं, पश्चात् बाल बनानेवाला सावधानी के साथ बच्चे के सर का मुण्डन करता है। बालों को आटे की लोई में रखकर और उस लोई से बच्चे का सिर पोंछ लिया जाता है और फिर उस लोई को किसी मैदान में गाड़ दिया जाता है अथवा किसी नदी में प्रवाह कर दिया जाता है। मुण्डन हो जाने पर बच्चे को स्नान कराके नवीन वस्त्र पहिनाते हैं और माता या पिता उसे गोद में लेकर त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण करते, परित्राण-पाठ सुनते और कुछ दान करते हैं तथा भिक्षु की सेवा-सत्कार के बाद प्रीति-भोजन और आनंद-मंगल मनाते हैं। सायंकाल को बुद्ध-मन्दिर में धूप-दीप के द्वारा बुद्ध-पूजा करते हैं।

(५) **कर्ण-वेधन**—बच्चे के कान छेदे जाना भी एक मांगलिक कृत्य है; जो जन्म के पांचवें वर्ष में होता है। यह भी

त्रिशरण सहित पचशील, परित्राण-पाठ श्रवण और दानादि के द्वारा पूर्व संस्कारों की भांति सम्पन्न किया जाता है। चतुर कान छेदने वाला बच्चे के कान को छेदता है और बाली आदि पिन्हा देता है। केश-कल्पन यदि तीसरे साल होता है तो कोई-कोई कर्ण-वेध को भी उसी के साथ कर देते हैं और कोई इसे विद्यारम्भ के साथ करते हैं।

(६) विद्यारम्भ—जन्म के पांचवें या सातवें वर्ष में बच्चों को विद्यारम्भ कराया जाता है। इसमें बच्चे को मंदिर में ले जाकर पहले बुद्ध-पूजन कराते हैं, फिर उसे त्रिशरण सहित पंचशील दिया जाता है। इसके पश्चात् बौद्ध-भिक्षु पट्टी या स्लेट पर बच्चे के हाथ में खरिया की बत्ती पकड़ा कर अपने हाथ के सहारे उससे अ, आ आदि स्वर एवं "बुद्धं सरणं गच्छामि", "धम्मं सरणं गच्छामि", "संघं सरणं गच्छामि" लिखवाते हैं। इस प्रकार विद्यारंभ हो जाने पर गृहस्थ अपने घर आकर पूर्ववत् आनन्द-उत्सव मनाते हैं। इसके पश्चात् बालक अपनी सुविधानुसार किसी विद्यालय में लिखते पढ़ते हैं। कोई-कोई प्राचीन प्रथानुसार सातवें वर्ष में विद्यारम्भ के समय सामणेर-दीक्षा लेकर विहार में ही वास करके साधुओं की भांति ब्रह्मचर्य का पालन करते और विद्याध्ययन करते हैं।

(७) विवाह—विवाह, गृहस्थ जीवन का एक बहुत बड़ा दायित्व-पूर्ण बन्धन है। विवाह केवल काम चरितार्थ के लिए नहीं बल्कि अपना संयमित जीवन बनाने तथा योग्य सन्तान उत्पन्न करने के लिये है।

विवाह की विधि यह है कि पहले बौद्धाचार्य त्रिशरण-सहित पंच-शील प्रदान करते हैं। फिर कम से कम मंगलसूत्र, रतनसूत्र, जयमंगल अट्ठगाथा पढ़ नीचे लिखे पति-पत्नी के पारस्परिक कर्तव्यों को समझाकर समयानुकूल उपदेश देते हैं।

पति का कर्तव्य

प्रिय उपासक ! आप सावधान होकर सुनें। भगवान् बुद्ध ने पति द्वारा पत्नी के लिये पाँच कर्तव्य बतलाए हैं—

(१) सम्माननाय—आपको अपनी स्त्री का सम्मान करना चाहिए।

(१) अनवमानाय—आपको अपनी पत्नी का अपमान नहीं करना चाहिए।

(३) अनतिचरियाय—आपको व्यभिचार, मादक द्रव्यों का सेवन और जुए के खेल आदि अनाचारों से विरत रहकर पत्नी का विश्वासपात्र होना चाहिए।

(४) इस्सरियवोसग्गेन (ऐश्वर्योत्सर्गेण)—आप धन दौलत से अपनी स्त्री को सन्तुष्ट करेंगे।

(५) अलङ्कारानुपादानेन (=अलंकारोपा दानेन)—आप अलंकार-आभूषणादि अपनी स्त्री को देकर प्रसन्न रखेंगे।

पत्नी का कर्तव्य

श्रीमती उपासिका! आप सावधान होकर सुनें भगवान् बुद्ध ने बुद्ध ने पत्नी द्वारा पति के लिये ये पाँच कर्तव्य बतलाए हैं—

(१) सुसंविहिता कम्मन्ता च होति—आपको अपने घर के सभी का ठीक प्रबंध करना चाहिए।

(२) सङ्गहितपरिजना च—आपको अपने परिवार, परिजन, नौकर-चाकरों को प्रसन्न और वश में रखना चाहिए।

(३) अनतिचारिनी च—आपको व्यभिचार आदि अनाचारों से विरत रह कर अपने पति का विश्वासपात्र बनना चाहिए।

(४) सम्भतं अनुरक्खति—आपको अपने पति के धन-दौलत की रक्षा करनी चाहिए।

(५) दक्खा च होति, अनलसा सब्ब किच्चेसु—आपको घर के कामों में दक्ष होना चाहिए और किसी काम में आलस न करना चाहिए।

इसके बाद निम्नलिखित गाथाओं द्वारा आचार्य आशीर्वाद देते हैं:—

भवतु सब्ब मंगलं, रक्खन्तु सब्ब देवता;
सब्ब बुद्धानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥ १ ॥
सब्ब धम्मानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते;
सब्ब संघानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥ २ ॥
यं दुन्निमित्तं अवमंगलं च, यो चामनापो सकुणस्ससद्दो;
पापग्गहो दुस्सुपिनं अकंतं, बुद्धानुभावेन विनासमेन्तु ।
धम्मानुभावेन विनासमेन्तु, संघानुभावेन विनासमेन्तु
आयु आरोग्य सम्पत्ति, सग्गसम्पत्तिमेव च;
ततो निब्बानसम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु ॥ ५ ॥
सब्बरोगविनिम्मुत्तो, सब्बसंतापवज्जितो;
सब्बवेरमतिक्कन्तो, निब्बुतो च तुवं भव ॥ ६ ॥
आकासट्ठा च भूमट्ठा, देवानागा महिद्धिका;
तेपि तुम्हे नुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥ ७ ॥
इद्धिमन्तो च ये देवा, वसन्ता इध सासने;
तेपि तुम्हे नुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥ ८ ॥
जयन्तो बोधिया मूले, सक्यानं नन्दिवड्ढनो;
एवमेव जयो होतु, जयस्सु जय मंगलं ॥ ९ ॥
सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता, पच्चेकानं च यं बलं ।
अरहन्तानं च तेजेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥ १० ॥
इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु ।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा, चन्दो पन्नरसो यथा ॥ ११ ॥

सब प्रकार से तुम लोगों का मंगल हो, सब देवतागण तुम लोगों की रक्षा करें। सब बुद्धों के प्रभाव से, धर्मों तथा संघों के प्रभाव से तुम लोगों का सदा कल्याण होवे।

जो कुछ दुर्निमित्त, अमंगल, अशकुन पशु-पक्षियों का शब्द, पाप-ग्रह और भयानक दुस्वप्न हैं। वे सब भगवान् बुद्ध के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

धर्म के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों और संघ के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, स्वर्ग और परम सुख निर्वाण-सम्पत्ति तुम्हें प्राप्त हों ॥ ५ ॥

तुम सब प्रकार के रोग, संताप और वैरों से मुक्त होकर परम सुख और शान्ति लाभ करो ॥ ६ ॥

महादिव्य-शक्ति सम्पन्न आकाशवासी एवं भूमिवासी देवगण और नागगण तुम लोगों को निरुज और सुखी रहने में सहायता करें ॥८॥

शाक्य लोगों के आनन्द वर्द्धक भगवान् शाक्यसिंह बुद्ध ने जिस प्रकार बोधि-वृक्ष के नीचे जय लाभ किया है, उनके प्रभाव से तुम लोगों का जय मंगल हो ॥ ९ ॥

बुद्ध बल प्राप्त सम्यक् सम्बुद्धों तथा प्रत्येक बुद्धों का जो बल है एवं अर्हन्त अर्थात् श्रावक बुद्धों का जो तेज है, उनके प्रभाव से तुम लोगों का सदा कल्याण हो ॥ १० ॥

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के संकल्प पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह पूर्ण हो ॥ ११ ॥

यहाँ तक बौद्ध शास्त्रानुमोदित विवाह कृत्य संक्षेप में कहा गया। इसके अतिरिक्त देश-भेद के अनुसार विवाह आदि मांगलक कार्यों के अवसर पर मकान और मंडप की सजावट, पोशाक की सजावट उत्तमोत्तम व्यंजनों से कुटुम्बियों व इष्ट मित्रों का प्रीति-भोजन, गाना-बजाना, आनन्द उत्सव इत्यादि लौकिक कृत्य भी करना चाहिए। किन्तु यह स्मरण रहे कि आनन्दोत्सव मनाते समय इतना बेहोश न हो जाना चाहिए कि मर्यादा का अतिक्रमण हो जाय। जैसे कि रूढ़ि-उपासक और अंध परंपरा के भक्तों के यहां इस अवसर पर गंदी गालियों का गान, नशों का पीना भांड़-वेश्या का नचाना और आतिशबाजी इत्यादि में धन नष्ट किया जाता है तथा इन सबके द्वारा होनहार बच्चों और युवक

युवतियों पर बुरा प्रभाव डालकर उन्हें चरित्रहीन बनने में प्रोत्साहन दिया जाता है। यह भी स्मरण रहे कि वर वधू का जोड़ा मिलाने में स्वास्थ्य, सदाचार, स्वभाव, गुण, योग्यता एवं उनकी आयु सीमा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बौद्धों के यहां बाल-विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल-विवाह सर्वथा वर्जित और निषिद्ध है।

(८-९) प्रव्रज्या और उपसंपदा—बौद्धों में सदाचार के नियमों के पालन की तारतम्यतानुसार चार श्रेणियां हैं—पंचशीलधारी-उपासक, अष्टशीलधारी-उपासक, दस शीलधारी-श्रामणेर और दो सौ सत्ताइस शीलधारी श्रमण या भिक्षु।

प्रव्रज्या और उपसंपदा दीक्षा, साधुओं के संस्कार हैं। प्रव्रज्य दीक्षाधारी को श्रामणेर और उपसम्पदा दीक्षाधारी को श्रमण या भिक्षु कहते हैं।

बौद्ध परंपरा के अनुसार उपसंपदा दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व सामणेर होना अनिवार्य होता है। सामणेर दीक्षा जीवन में सभी को एक बार ग्रहण करना चाहिए, चाहे वह अल्पकाल के लिए ही क्यों न हो! उपसम्पदा दीक्षा का ग्रहण करना सबके लिए अनिवार्य नहीं होता। सामणेर, प्रव्रज्या-दीक्षा लेने के उपरान्त "चीवर" (साधुओं के वस्त्र) धारण करके विहार में रहते हैं और वहां जीवन के उच्चस्तर में, विहार करने का अनुशीलन करते हैं।

प्रव्रज्या और उपसंपदा दीक्षा की विधि यहां नहीं लिखी गई। इसके लिए विनय पिटक या प्रातिमोक्ष अवलोकन करने का कष्ट करें।

(१०) अन्तिमकृत्य और मृतक संस्कार—जब कोई व्यक्ति मरने के सन्निकट होता है तब उस समय बौद्ध भिक्षु आते हैं। मरणासन्न व्यक्ति को वे परित्राण पाठ हैं और यथाशक्ति चीवरादि दान कराते हैं। यदि परित्राण पाठ सुनाते-सुनते उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो उसके लिए शुभ समझा जाता है।

मृतक को स्मशान ले जाने के पूर्व नहलाते, सुगंधित द्रव्य लगाते और कफन देते हैं तब भिक्षु को बुलाते हैं। भिक्षु आने पर वहां उपस्थित व्यक्तियों को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं। निम्नोक्त मंत्रों से कुछ श्वेत वस्त्र दान कराते हैं। इसे मृतक-वस्त्र कहते हैं।

दायक (उपासक) के हाथ में एक जल का गड़वा होता है उससे वह किसी थाली इत्यादि पात्र में शनैः शनैः जल गिराता है और भिक्षु मंत्र पढ़ते हैं:—

ससारवट्टदुक्खतो मोचनात्थाय इमानि पंच सीलानि समादित्वा मम परलोकगतस्स पितुस्स उद्देस्सेन इदं वत्थं भिक्खुस्स देम।

इदं में ञातीनं होतु सुखिता होतु ञातयो।
उन्नमे उदकं वुट्ठं यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतोदिन्नं पेतानं उपकप्पति॥
यथा वारिवहापुरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति॥
एत्तावता च अम्हेहि, सम्भतं पुञ्ञसम्पदं।
सब्बे देवानुमोदन्तु, सब्बसम्पतिसिद्धिया।
आकासट्ठा च भूमट्ठा देवा नागा महिद्धिका;
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा चिरं रक्खन्तु सासनं।
इमेन पुञ्ञकम्मेन सब्बे सत्ता सुखी होन्तु।

संसार रूप दुःख-चक्र से छूटने के लिये हम पंचशील ग्रहण पूर्वक अपने परलोक गत पिता (माता, भ्राता, भगिनी इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो उसका यहाँ नाम लेना चाहिए) के उद्देश्य से मृतक-वस्त्र भिक्षु (एक भिक्षु से अधिक होने पर 'भिक्षु-संघ' कहना चाहिए) को दान करते हैं।

इस दान का फल हमारे ज्ञातियों को प्राप्त हो और वे सुखी हों।

जैसे कोई ऊंचे स्थान पर टिका हुआ या मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों को प्राप्त हो।

जिस प्रकार जलपूर्ण नदियों का प्रवाह समुद्र को परिपूर्ण करता है उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे पितरों का पूर्ण उपकार करेगा।

हमारे द्वारा अब तक जो पुण्य-सम्पत्ति संचित हुई है। सब देवगण सर्व सम्पत्ति साधक हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करें।

आकाश और पृथिवी स्थित महाऋद्धिसम्पन्न देवगण और नाग-गण इस हमारे पुण्य का अनुमोदन करके भगवान् बुद्ध के शासन-धर्म और देशना धर्म की रक्षा करें।

इस पुण्य कर्म के द्वारा सब प्राणी सुखी हों।

इस प्रकार दान हो जाने पर मृत व्यक्ति के समीप उपस्थित व्यक्तियों को बौद्ध भिक्षु निम्नलिखित मंत्रों द्वारा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं:—

अनिच्चा वत संखारा उप्पादवयधम्मिनो;
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो।

चक्खु लोके दुक्खसच्चं लाभो अलाभो यसो अयसो निन्दं पसंसा दुक्खं सुखं अनिच्चा अनत्ता विपरिणाम-धम्मं। पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा उप्पज्जन्ति। एत्थ नरुज्झमाना निरुज्झन्वि ॥ ३ ॥

इसी प्रकारः—सोतं लोकं, घानं लोके, जिह्वा लोके, कायो लोके, रूप लोके, सद्दो लोके, गंधो लोके, रसो लोके, फोठ्ब्बोलोके, मनोलोके, धम्मोलोके, इन ग्यारह आयतनों को आदि में 'चक्खु लोके' की जगह उच्चारण करके उसके साथ शेष सब मंत्र का पाठ करना चाहिए।

समस्त संस्कार (वस्तु मात्र) अनित्य है। उत्पन्न होना और नाश होना उसका स्वभाव है। उत्पाद एवं निरोध निरंतर होता रहता

है। इस परिवर्तन शील संस्कार से मुक्त (निर्वाण) होना ही परम सुख है ।

इस लोक में चक्षु-इन्द्रिय, दुःख का कारण या दुःख-सत्य है । लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा-प्रशंसा और सुख-दुःख ये सब (अष्ट लोक धर्म) अनित्य, अनात्म और परिणाम धर्म वाले हैं । इससे प्रिय रूप और सात (सुख) रूप तृष्णा मन में उत्पन्न (पुनर्जन्म का कारण) होती है । इस तृष्णा का निरोध करने से निर्वाण होता है । बाकी ग्यारहों का भी इसी प्रकार अर्थ है। केवल चक्षु की जगह दूसरे ग्यारह आयतना के नाम क्रमशः हो जायेंगे । यथा श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय, रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, मन और धम (मन के विषय दुःख सुखादि) ।

इस अनित्य-देशना के बाद मृतक की अर्थी श्मशान ले जाते हैं। अर्थी के साथ जितने मनुष्य होते हैं, वे सब बड़े सावधान और गम्भीरता के साथ चलते हैं और अनित्य-भावना के मत्रों का उच्चारण और अर्थों का चिन्तन करते हुए जाते हैं। श्मशान पहुँच कर चिता लगाते हैं और उस पर शव को रखते हैं, शव के सम्मानार्थ यहाँ जो उपस्थित होते हैं, बौद्ध भिक्षु उन्हें त्रिरत्न सहित पंचशील प्रदान करते हैं तथा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं। यदि घर पर मृतक-वस्त्र दान नहीं किया गया है तो यहाँ पर किया जाता है। तत्पश्चात कपूर, अगर, चंदनादि कुछ सुगन्धित वस्तुओं के साथ चिता में आग लगाई जाती है ।

महान् एवं सुविख्यात पुरुषों की अवशिष्ट अस्थियां सम्मानार्थ सुरक्षित रखी जाती हैं। साधारण जन, जिनमें शव के दाह संस्कार करने का सामर्थ्य नहीं है, शव को भूमि में गाड़ देते हैं।

मरने के सातवें दिन साप्ताहिक क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त मासिक, छः मासिक और वार्षिक क्रिया भी की जाती है। इन क्रियाओं

की विधि यह है, कि उपासक बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराते हैं और चीवर आदि परिष्कारों का दान करते हैं तथा भोजन के सब व्यंजनों में से थोड़ा थोड़ा अंश निकाल कर एक पत्तल पर रख, किसी मैदान में पशु पक्षियों के लिए रख देते हैं। फिर जिस मृत व्यक्ति के उद्देश्य से यह क्रिया की जाती है, उसके लिए इस पुण्य का निम्नोक्त मंत्रों द्वारा उत्सर्ग करते हैं और अनुमोदन एवम् सद्भावना करते हैं। बौद्ध-भिक्षु मंत्र पढ़ते जाते हैं और दायक या उपासक गडुवे में जल लेकर किसी पात्र में छोड़ता जाता है।

(इस दिन यथाशक्ति असहाय, असमर्थ दुःखी अनाथों को दान दिया जाता है तथा कुटुम्ब-भोजन भी होता है)

उत्सर्ग मन्त्र यह है:—

संसारकान्तारतो दुक्खतो मुंचित्वा निब्बाणसच्छिकरणत्थाय इमानि पंच सीलानि समादयित्वा मम परलोक गतस्स मातुस्स उद्देस्सेन एतानि दानवत्थूनि सद्धिं पिंडदानं देम ॥१॥

इदं मे ञातीनं होतु सुखिता होन्तु ञातयो ॥ २ ॥

(तीन बार)

उन्नमे उदकं वुट्ठं यथा निन्नं पवत्तति ।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ ३ ॥

(तीन बार)

यथा वारिवहापूरा परिपूरेन्ति सागरं । एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ ४ ॥ (तीन बार)

संसार रूपी दुर्गम बन के दुःखों से मुक्त होकर निर्वाण साक्षात्कार करने के लिये हमने पंचशील आदि ग्रहणपूर्वक अपने परलोक गत माता के उद्देश्य से (पिता, भ्राता इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो, उसका नाम यहाँ लेना चाहिए) इन दानीय वस्तुओं के साथ भिक्षुओं को हम भोजन दान करते हैं।

इन दान का फल हमारे ज्ञाति को प्राप्त हो और वे सुखी हों। जैसे ऊँचे स्थान पर टिका हुआ या मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है, वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

जिस प्रकार, जलपूर्ण नद-नदियों का प्रवाह सागर को परिपूर्ण करता है उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

किसी विशेष दान पुण्यादि सत्कर्म करने के बाद पुण्यानुमोदन और पुण्य वितरण पूर्वक सबके हित और सुख की कामना नीचे लिखी हुई गाथाओं द्वारा करना चाहिए।

पुण्यानुमोदन और सद्भावना

एत्तावता च अम्हेहि, सम्भतं पुञ्ञसम्पदं।
सब्बे देवानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्तिसिद्धिया॥
सब्बे सत्तानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्तिसिद्धिया।
सब्बे भूतानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्ति सिद्धया॥
आकासट्ठा च भूमट्ठा, देवा नागा महिद्धिका।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु सासनं॥
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु देसनं।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु मं परंति॥
इमेन पुञ्ञकम्मेन, मा मे बाल समागमो।
सतं समागमो होतु, याय निब्बान पत्तिया॥
इमिना पुञ्ञकम्मेन, उपज्झायगुणुत्तरा।
आचरियोपकारा च, माता पिता पिया मम॥
मित्ता अमित्ता मज्झत्ता, गुणवन्ता नराधिपा।
ब्रह्मा मारा च इन्दा च, लोकपाला च देवता॥

भवग्गुपादाय अविचि हेट्ठतो हेट्ठन्तरे।
सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, फुसन्तु निब्बुत्ति सुखं ॥
देवो वस्सतु कालेन, सस्स सम्पत्ति होतु च।
फीतो भवतु लोको च, राजा भवतु धम्मिको ॥

इसके बाद बौद्धाचार्य निम्नोक्त गाथाओं से अनुमोदन करते और आशीर्वाद देते हैं:—

सो ञाति धम्मो च अयं निदस्सितो,
पेता नं पूजा च कता उलारा।
बलञ्च भिक्खूनं अनुपदिन्नं,
तुम्हेहि पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं।
इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा चन्दो पन्नरसी यथा ॥
आयुआरोग्यसम्पत्ति, सग्गसम्पत्तिमेव च।
ततो निब्बानसम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु ॥

पुण्यानुमोदन और सद्भावना

हमारे द्वारा अब तक जो पुण्य-सम्पत्ति संचित हुई है; सब देवगण, प्राणिगण, और भूतगण, सर्व सम्पत्ति साधक हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करें।

आकाश और पृथिवी स्थित महाऋद्धि सिद्धि संपन्न देवगण और नागगण इस हमारे पुण्य का अनुमोदन करके भगवान् बुद्ध के शासन धर्म की सदा रक्षा करें। हमारे और दूसरे सब प्राणियों की भी रक्षा करें।

इस पुण्य कर्म के प्रभाव से जब तक निर्वाण प्राप्त न हो, तब तक हमें दुष्ट पुरुषों का संग न हो। सत्पुरुषों का ही सत्संग लाभ हो।

हमने जो कुछ पुण्य कर्म किया है उसके प्रभाव से श्रेष्ठ गुण सम्पन्न हमारे उपाध्याय, आचार्य, उपकारी व्यक्ति, माता, पिता, प्रिय बंधु-बांधव,

मित्र, शत्रु मध्यस्थ और गुणवान् व्यक्ति गण, ब्रह्मा, मार (कामदेव) इन्द्र, लोकपाल और सब देवगण, भवाग्र से लेकर अवीचि तक के मध्य में जितने भी प्राणी हैं, वे सब सुखी हों और निर्वाण लाभ करें। उचित समय पर मेघ जल बरसावें, धान्य और सम्पतियों से धरणी परिपूर्ण हों, सब प्रकार से जगत समृद्धशाली हो और राजा लोग धार्मिक हों।

आचार्य द्वारा अनुमोदन एवं आशीर्वाद

इस पुण्य कार्य द्वारा ज्ञाति धर्म का पालन हुआ। परलोक गत पितरों का खूब पूजा सत्कार हुआ, भिक्षुओं की सहायता करना हुआ और आप स्वयं भी पुण्य का संचय किया।

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएं तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों।

आयु, आरोग्य-सम्पति तथा स्वर्ग-सम्पत्ति और परम सुख निर्वाण तुम्हें प्राप्त हों।

मृत व्यक्ति की तृप्ति व सत्कार के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना 'श्राद्ध' कहलाता है। यों तो जीवितावस्था में सर्वत्र ही एक दूसरे के प्रति प्रेम-व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, परन्तु मरने के बाद भी अपने पूज्य, स्वजन, संबंधियों के स्मरण तथा सम्मानार्थ कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना सभ्य और शिष्ट समाज का कर्तव्य होता है। यही कारण है कि यह मृतक सत्कार और श्राद्ध हर देश व समाज में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

शिष्टाचार परिच्छेद

भारतीय-बौद्ध-समाज के शिष्टाचार के अनुसार अभिवादन या वंदना करने की विधि दो प्रकार की है—अंजलिबद्ध और पंचांग।

अंजलिबद्ध अभिवादन—दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर तथा मस्तक नवाकर 'वंदामि भन्ते' इस प्रकार कहते हुए किया जाता है।

पंचांग अभिवादन—दोनों घुटनों को जमीन पर टेक कर और दोनों हाथों के पंजों को आगे की ओर भूमि पर लगाकर तथा उसी पर मस्तक रखकर 'ओकास वंदामि भन्ते द्वारत्तयेन कतं सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते" इस प्रकार कहते हुए किया जाता है। (इतना स्मरण रहे कि पंचांग प्रणाम स्वच्छ भूमि या बिछे हुए आसन पर करना चाहिए, जिससे कपड़े धूलि से मैले न हों।

इस प्रकार से बौद्ध उपासक या सद्गृहस्थ लोग बौद्ध-भिक्षु को अभिवादन करते हैं तथा बौद्ध-भिक्षु भी अपने से वय-ज्येष्ठ भिक्षु को किया करते हैं। वय-ज्येष्ठ के विषय में यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि बौद्ध-भिक्षुओं के भीतर ज्येष्ठ, कनिष्ठ के लिए जाति, कुल और जन्मायु आदि नहीं माना जाता है। बल्कि बौद्ध-भिक्षु होने के समय से ज्येष्ठ कनिष्ठ माना जाता है।

जब संघ अर्थात् कई भिक्षुओं को एक साथ अभिवादन करते हैं, तब अभिवादन मंत्र में कुछ पाठान्तर हो जाता है। अतएव यहां दोनों पाठ अर्थ सहित लिखे जाते हैं :—

भिक्षु-वन्दना

ओकास वंदामि भन्ते, द्वारत्तयेन कतं सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते।

अवकाश दीजिए भन्ते ! मैं आपकी वंदना करता हूँ। काय, वचन और मन द्वारा जो कुछ अपराध हुए हों, भन्ते ! उन्हें क्षमा कीजिए।

संघ-वन्दना

ओकास सघं अहं वंदामि। द्वारत्तयेन कत सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते संघो।

अवकाश दीजिये, मैं संघ को वंदना करता हूँ। काय, वचन और मन इन त्रिविध द्वारों से जो कुछ अपराध हुए हों, भन्ते संघ ! उन्हें क्षमा कीजिए।

अभिवादन या वंदना करने वाले को भिक्षु या भिक्षु संघ नीचे लिखी गाथा से आशीर्वाद देते हैं:—

अभिवादन सीलिस्स, निच्चं बद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥

हमेशा वृद्धों की सेवा करने वालों और प्रणाम करनेवालों की आयु, रूप, सुख और बल इन चारों संपदाओं की वृद्धि होती है।

जयन्तो बोधियामूले सक्यानां नन्दिवड्ढनो।
एवमेव जयो होतु जयस्सु जय मंगले॥

शाक्यों के आनन्द के बढ़ानेवाले भगवान् बुद्ध ने जिस प्रकार बोधि वृक्ष के नीचे जय लाभ किया था उसी प्रकार तुम्हारी भी हो, जय हो, जय हो।

यह उपर्युक्त विधि तो हुई बौद्ध-भिक्षु या संघ को अभिवादन करने की। परन्तु बौद्ध-उपासक या गृहस्थ लोग आपस में एक दूसरे को 'नमस्कार' कहकर सम्मान करते हैं तथा माननीय और पूजनीय व्यक्तियों को, जो प्रव्रजित नहीं हुए हैं ऐसे वय-वृद्ध, माता और पिता-आदिकों को अंजलिबद्ध या पचांग या चरण स्पर्श करके नमस्कार या गुरुजन अभिवादन करते हैं।

पर्व त्यौहार परिच्छेद

यद्यपि धार्मिक लोगों को सत्कर्म यथाशक्ति सदैव करना चाहिए। इसके लिए काल का कोई प्रतिबंध नहा है तथापि पूर्वाचार्यों ने सर्व-साधारण की सुविधा के लिए कुछ समय की मर्यादा ठहरा दी है। जैसे २४ घंटे दिन-रात में प्रातःकाल और सायंकाल। महीने में चार दिन अमावस्या, पूर्णिमा और दोनों पक्षों की अष्टमियाँ। साल में चार बहुत बड़े पर्व वैशाखी पूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा, आश्विनी पूर्णिमा और माघी पूर्णिमा। इन समयों में त्रिरत्न-पूजा, वंदना, दान, शील और भावना (ध्यान) इत्यादि पुण्य कार्य विशेष रूप से करना चाहिए।

वैशाखी पूर्णिमा—इस दिन संसार के सर्वोपरि पूज्य और शिक्षक, अहिंसा, समता, संयम और शांतिमय लोकोत्तर धर्म के प्रवर्तक, विश्व बंधुत्व के संस्थापक, परम कारुणिक भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध का जन्म, उनको बुद्धत्व लाभ और उनका परिनिर्वाण (मृत्यु) हुआ था। इन्हीं तीन घटनाओं के कारण यह वैशाखी पूर्णिमा बौद्धों में पवित्र महान् पर्व समझी जाती है।

आषाढ़ी पूर्णिमा—इस दिन तुषित नामक देवलोक से श्वेतकेतु बोधिसत्त्व ने गौतम बोधिसत्त्व के रूप में महामाया के गर्भ में प्रवेश किया था। इसी दिन बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण अर्थात् राजपाट, स्त्री और पुत्र आदि सर्वस्व त्याग किया था। बुद्धत्व प्राप्त करने के दो महीने बाद वाराणसी में जाकर ऋषिपत्तन मृगदाव में (जिसका वर्तमान नाम सारनाथ है। पहले पहल अपने पंचवर्गीय शिष्यों को धर्म-उपदेश देकर अपने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया था और आज के ही दिन बौद्ध भिक्षु लोग वर्षावास अर्थात् बरसात के तीन महीने किसी

एक निर्दिष्ट स्थान पर रह कर धर्मानुष्ठान और धर्मोपदेश करने का व्रत लेते हैं।

आश्विनी पूर्णिमा—इस क्वार मास की पूर्णिमासी के दिन भगवान् बुद्ध त्रयत्रिंश देवलोक में अपनी माता महामाया और देवगणों को धर्मोपदेश देकर तीन महीने के बाद सांकाश्य नगर में अवतीर्ण हुए थे। आज के दिन बौद्ध भिक्षुओं का त्रैमासिक वर्षावास व्रत समाप्त होता है। इसी कारण इसका नाम 'प्रवारणोत्सव' भी है।

माघी पूर्णिमा—इसी दिन भगवान् बुद्ध ने वैशाली सारंदद चैत्य नामक विहार में, आज से तीन महीने बाद 'महापरिनिर्वाण में जाऊँगा' इस प्रकार संकल्प करके आयु-सस्कार का विसर्जन किया था, और अपने परम प्रिय शिष्य आनन्द को यह रहस्य समझा कर इसी दिन से अपना अंतिम प्रचार कार्य आरम्भ किया था। इसीलिए यह दिन बौद्ध जगत् में परम पवित्र माना गया।

बौद्ध सद्गृहस्थ लोग इन सब पर्व त्योहारों के दिन विशेष रूप से पुण्यानुष्ठान करते और आनन्दोत्सव मनाते हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय-बौद्ध सद्गृहस्थ नीचे लिखे पर्व भी मनाया करते हैं—

विजयादशमी—आश्विन शुक्ल १० मी। इस दिन सम्राट् अशोक ने कलिंग-विजय करके यह प्रतिज्ञा की थी कि अब हम शस्त्र के द्वारा हिंसात्मक विजय न करके धर्म-प्रचार के द्वारा अहिंसात्मक विजय करेंगे। हिंसा-पूर्ण युद्धों से पीड़ित जनता महान् बौद्ध सम्राट् की इस अहिंसात्मक विजय की घोषणा को सुनकर बहुत हर्षित हुई और इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दिन को सदा स्मरण रखने के लिए उसने इस दिन को पर्व बना लिया। इस दिन भगवान् बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण और बौद्ध-भिक्षुओं को दान एवं कुटुम्ब में आनन्द-उत्सव मनाया जाता है।

दीवाली—यह त्यौहार कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है। यह ऋतुपर्व है। वर्षा समाप्त हो जाने पर घरों की सफ़ाई की जाती

है और इस दिन नये धान के लावा, च्यूरा और बताशों से भगवान् बुद्ध का पूजन करके शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण और दान किया जाता है। दिन में यह सब कृत्य होता है और रात्रि में पर्व की खुशी में बौद्ध सद्गृहस्थ भगवान् के मंदिर एवं अपने घरों में दीपावली जलाते हैं। मिथ्यादृष्टि वाले रूढ़िवादी लोग इस त्योहार पर जुए का अनर्थकारी खेल खेलते और उसे धर्म संगत बताते हैं। बौद्ध सद्गृहस्थों के लिए जुए का खेल नितांत वर्जित है।

वसंत—यह त्योहार माघ सुदी ५ को होता है। यह भी ऋतुपर्व है। इस दिन आम्र के बौर, सरसों के पीले फूल एव केसर पड़ी हुई खीर से भगवान् बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण एवं धर्म श्रवण किया जाता तथा बौद्ध भिक्षुओं को केसरिया खीर का भोजन और पीले चीवर का दान दिया जाता है। बौद्ध सद्गृहस्थ इस दिन स्वयं भी केसरिया खीर एवं अन्य उत्तमोत्तम पदार्थों का भोजन करते एवं संगीत-वाद्य आदि के द्वारा आनन्दोत्सव मनाते हैं।

होली—यह त्योहार फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह भी ऋतुपर्व है। इस समय शीत-काल की समाप्ति होती है, अतः जाड़े के कपड़े बदलकर नये वसंत और ग्रीष्म के कपड़े पहने जाते हैं और नये अन्न का भोजन किया जाता है। नवान्न के व्यंजनों से भगवान् बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण और भिक्षुओं को दान करने के उपरांत कुसुम, पलाश, पारिजात या हल्दी को उबालकर उसके रंग को बौद्ध सद्गृहस्थ अपने इष्ट मित्रों पर छिड़कते हैं। इसके पश्चात् उबटन आदि लगाकर भली भाँति स्नान करके नवीन वस्त्रों को पहनते और परस्पर मिलन-भेंटन करते हैं। त्योहार की खुशी में विविध प्रकार के पकवान और मिठाइयाँ बनाई जाती और आनदोत्सव मनाया जाता है। रूढ़िवादी लोग इस त्योहार पर बड़ी असभ्यता करते हैं। किंतु बौद्ध सद्गृहस्थों को उनकी तरह गंदी गाली बकना, कीचड़ उछालना, नशा पीना और जगह जगह लकड़ियों को निरर्थक फूंक कर

होली जलाना इत्यादि असभ्यता के काम करना उचित नहीं है।

नागपंचमी–यह त्योहार श्रावण शुक्ल ५ मी को मनाया जाता है। यह भारतवर्ष की प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध सुसभ्य नाग-जाति का त्योहार है। नाग जाति के लोग भगवान् बुद्ध के बड़े भक्त रहे हैं। इस दिन खीर से भगवान् बुद्ध का पूजन किया जाता है। पूजन, शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण, दान के उपरांत बौद्ध सद्गृहस्थ स्वयं भी खीर का भोजन विविध व्यंजनों के साथ करते तथा गाने बजाने के साथ त्योहार का उत्सव मनाते हैं।

यहां संक्षेप में पर्व-त्योहारों का उल्लेख किया गया बौद्ध सद्गृहस्थों को सदा स्मरण रखना चाहिए कि किसी पर्व-त्योहार के मनाते समय आनंदोल्लास में ऐसा प्रमत्त न हो जाना चाहिए की मर्यादा का अतिक्रमण हो जाय, जैसे कि जुए का खेलना, नशों का पीना, गंदी गालियाँ बकना, कीचड़ उछालना, स्त्रियों के साथ असभ्य व्यवहार करना, दूसरों के मकानों में ढेले फेंकना, इत्यादि। भगवान् बुद्ध ने प्रमाद से सदा बचने के लिये आदेश किया है। यथा—

अप्पमादो अमत पदं पमादो मच्चुनो पदं
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।

धम्मपदं २, १

अप्रमाद अमृत पद है प्रमाद मृत्यु का पद है। अप्रमादी मनुष्य अमृत-पद को लाभ करता है और प्रमादी मृतक के तुल्य है।

दान परिच्छेद

बौद्ध शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा की गई है और विविध भाँति के दानों का वर्णन है। दान का अर्थ है देना अर्थात् अपनी वस्तु का स्वत्व त्यागकर दूसरे को देना। दान के तीन उपकरण हैं, दान की चेतना (इच्छा) दान की वस्तु और दान का लेने वाला। सब कुछ होते हुए भी यदि दान करने की इच्छा न हो, तो दान नहीं हो सकता; दान की इच्छा होते हुए भी यदि दान देने के लिए कोई वस्तु पहने पास नहीं है तो भी दान नहीं हो सकता और यदि दान करने की इच्छा भी है और दान करने के लिए वस्तु भी है लेकिन यदि कोई दान ग्रहण करने वाला न हो, तो भी दान नहीं हो सकता।

दान कर्म अपने गुरुत्व के अनुसार तीन प्रकार का है—दृष्ट धर्म वेदनीय परिपक्व वेदनीय और अपरापर्य्य वेदनीय। जो दान जिस अवस्था में किया जाय, वह उसी अवस्था में विपाक (फल) प्रदान करे, जैसे बाल्यावस्था में करने से वह दान अपना विपाक बाल्यावस्था में ही प्रदान करे और युवावस्था में करने से अपना विपाक युवावस्था में प्रदान करे और वृद्धावस्था में करने से अपना विपाक वृद्धावस्था में प्रदान करे दृष्ट धर्म वेदनीय कहलाता है। जो दान कर्म सात दिन के भीतर ही अपना विपाक (फल) प्रदान करे, वह परिपक्व वेदनीय कहलाता है। जो दान कर्म भविष्य में जब अवकाश पावे तभी अपना विपाक (फल) प्रदान करे, वह अपरापर्य वेदनीय कहलाता है।

दान तीन प्रकार के हैं—धर्म दान, अभय दान और अमिष दान अर्थात् वस्तु दान। जिसके धारण करने से मनुष्य अपने दुःखों की अत्यन्त निवृति कर सकता है, 'धर्म' कहते हैं। उस धर्म का उपदेश करना या प्रचार करना 'धर्म दान' कहलाता है। पीड़ित, दुःखित,

अनाथों और भयभीतों को शान्ति और आश्रय देना तथा रक्षा करना 'अभय दान' कहलाता है। अन्न, जल, वस्त्र, औषध, पुस्तक और स्थान आदि वस्तुओं का अधिकारियों को दान करना 'अमिष दान' कहलाता है।

दान देने वाले तीन प्रकार के होते हैं:—दान दास, दान सहाय और दानपति। जो स्वयं अच्छी वस्तुओं का व्यवहार करते हैं, किन्तु दूसरों को देने के लिए सस्ते के लोभ से खराब वस्तुओं का दान देते हैं ऐसे दाता को 'दान दास' कहते। जो लोग स्वयं अपने लिए जैसी वस्तुओं को व्यवहार में लाते हैं, दूसरों को भी ठीक वैसी ही वस्तुओं का दान करते हैं; ऐसे लोगों को 'दान सहाय' कहते हैं। जो मनुष्य अपने निर्वाह के लिए चाहे जैसी वस्तु व्यवहार में लाते हों, परन्तु दूसरों के लिए उत्तम से उत्तम वस्तु दान करते हैं, ऐसे लोगों को 'दानपति' कहते हैं।

दायक और दानपत्र की योग्यता और अयोग्यता के कारण दान की विशुद्धता चार प्रकार की है—

(१) दायक द्वारा दान विशुद्धि (२) दान पात्र द्वारा दान विशुद्धि (३) दायक और दान पात्र दोनों द्वारा दान की अशुद्धि, तथा (४) दायक और दान पात्र दोनों द्वारा दान की विशुद्धि।

(१) यदि कोई धार्मिक मनुष्य अपनी सुकृति की कमाई को उदार और प्रसन्न मन से किसी अयोग्य दान पात्र को दान देता है, तो यह दाता द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान दाता के कारण उत्तम फलदायक होगा।

(२) यदि कोई असच्चरित्रवान् मनुष्य अधर्म की कमाई को संकीर्ण मन और अप्रसन्न चित से किसी सुपात्र को दान करता है, तो यह दान पात्र द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान अपने दानपात्र द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान अपने दानपात्र के कारण उत्तम फल देने वाला होगा।

(३) यदि कोई असच्चरित्र मनुष्य अधर्म की कमाई को अपने संकीर्ण मन और अप्रसन्न चित्त से किसी कुपात्र को दान करता है, तो वह दान-दाता और गृहीता दोनों के द्वारा दान की अशुद्धि हुई। अर्थात् यह दान दाता और गृहीता दोनों के अयोग्य होने के कारण उत्तम फलदायक न होगा।

(४) यदि कोई धार्मिक व्यक्ति अपनी सुकृति की कमाई को उदारतापूर्वक प्रसन्न चित्त से किसी सुपात्र को दान देता है, तो यह दाता और गृहीता दोनों द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान दायक और दानपात्र दोनों की योग्यता के कारण अधिक से अधिक परमोत्तम फल प्रदान करेगा।

दान का विस्तृत वर्णन बौद्ध शास्त्रों में पढ़ना चाहिए। यहां कुछ नित्य नैमित्तिक मुख्य दानों का उल्लेख किया जाता है:—

१—चतुःप्रत्यय दान—(१) चीवर (बौद्ध साधुओं के पहनने के कपड़े), (२) शयनासन (बिछौना), (३) पिण्ड पात्र (भोजन), और (४) औषध (बीमारी की अवस्था में औषध)। इन्हीं को चतुःप्रत्यय कहते हैं। बौद्ध सद्गृहस्थों को यथाशक्ति यह दान प्रतिदिन करना चाहिए।

२—अष्ट परिष्कार दान—बौद्ध-साधुओं के व्यवहार की आठ वस्तुओं का दान। यथाः—त्रि-चीवर अर्थात् बौद्ध साधुओं (भिक्षुओं) के पहननेके तीन कपड़े—(१) अन्तर वासक (कटि वस्त्र, लुन्गी) (२) उत्तरीय (चादर), (३) संघाटी (एक में सिली हुई दो चादरें), (४) भिक्षा-पात्र (भोजन पात्र), (५) छुरा, (६) सुई, (७) कमर बंधनी, (८) परिश्रावण (जल छानने की थैली)।

३—काल-दान पाँच हैं—(१) आये हुए भिक्षुओं का यथोचित सेवा-सत्कार करना। (२) धर्म-प्रचार करने के लिए किसी दूसरे देश में गमन करने वाले भिक्षुओं की यथा सम्भव सहायता करना। (३) रोग से पीड़ित भिक्षुओं की सेवा-सुश्रुषा करना। (४) दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओं की भोजन आदि द्वारा रक्षा करना। (५) फसल

के उत्पन्न नये फल और अन्न आदि को पहले भिक्षुओं को दान देना।

पात्र भेद से दान के तीन भेद हैं। यथाः—(१) पद्गल दान, (२) संघ दान, (३) और उद्देश्य दान।

(१) किसी व्यक्ति विशेष को दान देना पुद्गल दान कहलाता है।

(२) समूह को दान देना संघ दान कहलाता है। बौद्ध शास्त्र के अनुसार कम-से-कम नगर में १० बौद्ध भिक्षुओं का और ग्राम में कम-से-कम ५ (पांच) का संघ माना जाता है।

(३) जो अब विद्यमान नहीं हैं जैसे भगवान् बुद्ध या अपने और कोई पूज्य आचार्य, माता-पिता, प्रिय इष्ट कुटुम्बीजन आदि के उद्देश्य से जो दान किया जाता है, वह उद्देश्य दान कहलाता है।

जीवन परिच्छेद

रोहिणी नदी के पश्चिम कपिलवस्तु नगरी शाक्यों के संघराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूर्व कोलियों का देवदह था। शुद्धोदन शाक्य भी कपिलवस्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने एक कोलिय राजा की दो कन्याओं, महामाया और प्रजापती से विवाह किया।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया को पुत्र होने के लक्षण प्रकट हुए। गर्भ के परिपूर्ण होने पर पितृगृह जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से बोली, देव! अपने पिता के कुल के देवदह नगर को जाना चाहती हूँ। राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक मार्ग को ठीक करवा कर उसे भारी सेवक परिषद् के साथ भेज दिया।

दोनों नगरों के बीच, दोनों ही नगर वालों की सम्मिलित सम्पत्ति लुम्बिनी नामक एक शालवन था। उस वन के समीप से जाते समय महामाया देवी को उसकी सुन्दरता देख उसमें क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। देवी ने एक सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेंत की छड़ी की नोक की भांति लटक कर देवी के हाथ के पास आ गई। उसने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय उसे प्रसव वेदना हुई। लोग इर्द-गिर्द कनात घेर अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े खड़े ही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। और उसी समय वर्षा होकर मेघ ने बोधिसत्त्व और उनकी माता के शरीर को ठंडा किया। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्त्व और उनकी माता को लेकर कपिलवस्तु नगर को ही लौट गये।

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुल में पूजित, आठ समाधि

(समापत्ति) वाले काल देवल नामक तपस्वी भोजन करके दिवा विहार के लिये तैयारी कर रहे थे। उन्हें मालूम हुआ कि महाराज शुद्धोदन के घर एक महायशस्वी पुत्र हुआ है। तपस्वी ने शीघ्र ही राजभवन में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ महाराज शुद्धोदन से कहा—महाराज आपको पुत्र हुआ है, मैं उसे देखना चाहता हूँ। महाराज ने सुन्दर रूप से अलकृत कुमार को मँगाकर दर्शन कराया।

काल देवल तपस्वी ने उस बालक में महापुरुष के लक्षण देख प्रसन्नता से खिल उठा और फिर रोया भी। महाराजा और परिजनों ने विस्मित हो हँसने और रोने का कारण पूछा। तपस्वी (ऋषि) ने कहा, इनको कोई संकट नहीं है, ये एक महान् पुरुष होंगे। पर मैं इनकी उस अवस्था को देख नहीं पाऊंगा। यह मेरा दुर्भाग्य है, इसी से मैं रोया।

पाँचवें दिन बोधिसत्व को शिर से पैर तक नहलाया। और नामकरण संस्कार किया गया। राज-भवन को चारों प्रकार के गन्धों से लिपवाया गया। खीलों सहित चार प्रकार के पुष्प बिखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजा ने तीनों वेदों के पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। उन्हें राजभवन में बैठा, सुन्दर भोजन करा, सत्कार-पूर्वक बोधिसत्व के भविष्य के बारे में पूछा।

उन भविष्य वक्ताओं में आठ मुख्य थे। उनमें से सात ने दो-दो उँगलिया उठाकर दो प्रकार की सम्भावनाएँ बतलाईं। अर्थात् ये महाज्ञानी विवृत कपाट बुद्ध अथवा चक्रवर्ती राजा (सम्राट) होगा। परन्तु उनमें के एक ने तो केवल एक ही प्रकार का भविष्य कहा कि ये निश्चय पूर्वक बुद्ध होगा। इनकी एक ही गति होगी।

उसी अवसर पर आयोजित जाति-बन्धुओं की परिषद ने अपने एक एक पुत्र को देने की प्रतिज्ञा की। यह कुमार चाहे बुद्ध हो अथवा शासक हम इसे अपने एक-एक पुत्र दे देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओं से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय राजकुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

राजा ने बोधिसत्व के लिये उत्तम रूपवाली, सब दोषों से रहित धाइयाँ नियुक्त करा दी। बोधिसत्व बहुत परिवार के बीच महती शोभा और श्री के साथ बढ़ने लगे।

एक दिन शाक्य राज्य में श्रमदान द्वारा खेत बोने का उत्सव था। श्रमदान के उस उत्सव के दिन लोग सारे नगर को देवताओं के बिमान की भाँति अलंकृत करते थे। सभी दास गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहन गंध माला आदि से बिभूषित हो, राज-भवन में इकट्ठे होते थे। राजा की एक हजार हला की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलों की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ सभी रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न व सुवर्ण जटित था। बैलों की सींग, रस्सी, कोड़े भी सुवर्ण खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ पुत्र को भी ले वहां पहुँचा। खेती के स्थान पर हो घनी छाया वाला जामुन का एक वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या बिछवाई गई। चन्दवा तनवाकर कनात से घिराकर पहरा लगवा दिया। फिर सब अलंकारों से अलंकृत हो मंत्रियों के सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर श्रमदान के लिए गया। वहाँ उसने तथा मंत्रियों ने सुनहले-रुपहले हलों को पकड़ा और कृषकों ने अन्य हलों को पकड़े। हलों को पकड़ कृषकों सहित राजा इस पार से उस पार और उस पार से इस पार आता था। वहां बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था।

बोधिसत्व को देखने वाली धाइयां इस राजकीय-तमाशे को देखने के लिये बाहर चली आईं और वहां बहुत देर कर दी। सिद्धार्थ कुमार भी इधर-उधर किसी को न देख झट पट उठे और श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे, प्रथम ध्यान प्राप्त किये। धाइयों ने कुमार अकेले हैं सोच जल्दी से कनात उठा अन्दर घुसकर कुमार को बिछौने पर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख धाइयों ने जाकर राजा से कहा। राजा ने वेग से आ, उस चमत्कार को देख मंत्रियों एवं शेष कृषक-परिषद के साथ आनन्दित हुआ।

बाल्य काल

राजपुत्र सिद्धार्थ शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे। उनके रूप-लावण्य की छटा देखकर माता-पिता, ज्ञाति, मित्र और पुरवासी लोग अति आनन्दित होते थे। उनके खेल-कूद और विनोद के लिए नाना प्रकार की सामग्री इकट्ठा की गई, किन्तु सिद्धार्थ शैशव काल से ही क्रीड़ासक्त न थे। उन्हें एकान्त में बैठना बहुत प्रिय था। जब वह कुछ बड़े हुए, तब राजा ने उन्हें विद्या-अध्ययन के लिए अपने कुलगुरु विश्वामित्र के आश्रम में भेज दिया। राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी प्रखर प्रतिभा से थोड़े ही काल में सब प्रकार की विद्याएँ प्राप्त कर लीं। उन्होने तत्कालीन प्रचलित सब प्रकार की विद्याएँ सीख ली। शिक्षा समाप्त होने पर राजकुमार गुरु-गृह से अपनी राजधानी लौट आये।

हंस पर दया

एक बार राजकुमार सिद्धार्थ अपने उद्यान में विचार-निमग्न बैठे थे कि आकाश में उड़ते हुए हंसों की पंक्ति में से बाण से विद्ध एक हंस उनके सम्मुख गिरा और छट-पटाने लगा। दया से द्रवित होकर राजकुमार ने उस हंस को उठा लिया और हौज़ के जल से उसके शरीर का रक्त धोकर उसके घावों पर सावधानी से पट्टी बांधने लगे। इसी समय उनका चचेरा भाई देवदत्त, वहाँ आया और बोला—"इस पक्षी को मैंने मारा है। मैं इसका स्वामी हूँ। इसे मुझको दे दीजिए।" सिद्धार्थ ने पक्षी देने से इनकार किया। अतएव परस्पर विवाद होने लगा। इसका निर्णय न्यायाधीश के निकट पहुँचा। न्यायाधीश ने निर्णय किया कि "जिसने इसकी रक्षा की है और जो उसके घावों को अच्छा करके उसे जीवन-दान देगा, वही उस पक्षी का स्वामी हो सकता है।"

विवाह

नई उम्र में ही राजकुमार के एकांतवास और वैराग्य-भाव को देखकर महाराज शुद्धोदन को कालदेवल ऋषि की भविष्यवाणी स्मरण हो आती थी। उन्हें अहर्निश यह चिंता रहती थी कि पुत्र कहीं विरक्त न हो जाय। अतएव राजा ने मंत्री पुरोहित और ज्ञति-जनों की सम्मति से देवदह के महाराज दंडपाणि की रूप-लावण्यवती कन्या राजकुमारी गोपा के साथ, जिसे यशोधरा और उत्पलवर्णा भी कहते हैं, राजकुमार के विवाह का प्रस्ताव किया। महाराज दंडपाणि ने उत्तर दिया कि "जो स्वयंवर की परीक्षा में जीतेगा, वही गोपा को वरेगा।" निदान स्वयंवर रचा गया। जिसमें देवदत्त आदि पांच-सौ शाक्य कुमार और अनेक गुणज्ञ एकत्रित हुए। महाराज शुद्धोदन, आचार्य विश्वामित्र और आचार्य अर्जुन आदि चतुर पुरुष परीक्षक मध्यस्थ नियुक्त हुये। इस स्वयंवर में लिपिज्ञान, संख्याज्ञान, लंघित, प्लवित, असि-विद्या, बाण-विद्या, धनुर्विद्या, काव्य, व्याकरण, पुराण, इतिहास, वेद, निरुक्त, निघंटु, छंद, ज्योतिष, यज्ञकल्प, सांख्य, योग, वैशेषिक, स्त्रीलक्षण, पुरुषलक्षण, स्वप्नाध्याय, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण अर्थविद्या, हेतुविद्या, पत्रछेद्य और गंधयुक्ति आदि कला और विद्याओं की परीक्षा में राजकुमार ने जब विजय पाई, तो राजकुमारी गोपा ने उनके गले में जयमाला डाल दी और विधिपूर्वक उनका विवाह हो गया। विवाह के समय राजकुमार सिद्धार्थकी आयु १६ वर्ष की थी और वही आयु राजकुमारी गोपा की थी। दोनों समवयस्क और परम सुन्दर थे।

विवाह होने पर भी राजकुमार का एकांत में बैठकर ध्यान करना और जन्म मरणादि प्रश्नों पर विचार करना न छूटा, जिससे महाराज शुद्धोदन की चिन्ता बढ़ गई। वह इस प्रकार का उपाय करनें लगे जिससे राजकुमार का वैराग्य-भाव कम हो। उन्होंने कुमार के आमोद-प्रमोद के

लिये तीन ऋतुओं के उपयोगी तीन महल बनवाए—इन महलों में छहों ऋतुओं के अनुकूल छटा छाई रहती थी और ये सब प्रकार की विलास योग्य वस्तुओं से परिपूर्ण थे। महाराज ने इन सुरम्य प्रासादों का नाम 'प्रमोद-भवन' रक्खा और कुमार की परिचर्या के लिये समवयस्का सुन्दर स्त्रियों को नियुक्त किया, जो नृत्य, गायन आदि हर प्रकार की कलाओं में प्रवीण थी। इन स्त्रियों के शरीर भांति-भांति की सुगंधों से सुवासित और अनुपम सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुशोभित रहते थे। सारांश यह कि महाराज ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि राजकुमार का चित्त सदैव विलासितामय जीवन में ही रमता रहे वैराग्य की ओर न जाने पावे; किन्तु इस प्रकार की ऐश्वर्यों का भोग करते हुये भी राजकुमार का विरक्ति-भाव और चिंताशीलता दूर नहीं हुई।

निमित्त-दर्शन और वैराग्य

महाराज शुद्धोदन ने यद्यपि राजकुमार के लिए भोग-विलास की हर प्रकार की सामग्री उनके प्रमोद-भवन में ही एकत्रित कर दी थी, फिर भी उनकी आन्तरिक भावनाएं दबी न रह सकीं। इस अवस्था के विषय में अंगुत्तर निकाय के तिक निपात में भगवान् बुद्ध भिक्षुओं से कहते हैं:—भिक्षुओं ! मैं बहुत सुकुमार था। मेरे सुख के लिए मेरे पिता ने तालाब खुदवाकर उसमें अनेक जातियों की कमलिनियाँ लगवाई थीं। काशी के बने रेशमी मेरे वस्त्र हुआ करते थे। मैं जब बाहर निकलता था तो मेरे नौकर मेरे ऊपर श्वेत छत्र इसलिये लगाते थे कि मुझे शीतोष्ण की बाधा न हो। शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं के लिये मेरे अलग-अलग प्रासाद थे। मैं जब वर्षाऋतु के लिये बने महल में रहने के लिये जाता था तो चार महिने बाहर न निकलकर स्त्रियों के गायन-वादन में ही समय बिताता था। दूसरों के घर दास और नौकरों को निकृष्ट अन्न दिया जाता था पर मेरे यहाँ दास-दासियों को उत्तम मांसमिश्रित अन्न मिला करता था।

१. "इस प्रकार सम्पति का उपभोग करते हुए मेरे मन में यह बात आई कि अविद्वान साधारण मनुष्य स्वयं जरा के पंजे में पड़ने वाला होते हुए भी जराग्रस्त आदमी को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है। पर मैं भी स्वयं जरा के पंजे में पड़ने वाला होते हुए यदि उस साधारण मनुष्य की भांति जराग्रस्त से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा तारूण्यमद समूल नष्ट हुआ।"

२. "अविद्वान साधारण मनुष्य स्वयं व्याधि के पंजे में पड़ने वाला होते हुए व्याधिग्रस्त मनुष्य को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है; पर मैं भी स्वयं व्याधि के भय से मुक्त न होते हुए यदि उस साधारण मनुष्य की भांति व्याधिग्रस्त से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा आरोग्य मद समूल नष्ट हुआ।"

३. अविद्वान साधारण मनुष्य स्वयं मरणधर्मी होते हुए मृत शरीर को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है। पर मैं भी स्वयं मरणधर्मी होते हुए यदि, उस साधारण मनुष्य की भाँति मृत शरीर से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा जीवन मद समूल नष्ट हुआ।"

४. "भगवान् और भी कहते हैं:—'अपर्याप्त जल में जिस प्रकार मछलियाँ तड़पती हैं, उसी प्रकार एक दूसरे का विरोध कर तड़पने वाली जनता को देखकर मेरे अंतःकरण में भय का संचार हुआ। चारों ओर संसार असार जान पड़ने लगा। संदेह हुआ कि दिशाएं काँप रही हैं। उनमें आश्रय को जगह खोजते हुए मुझे निर्भय स्थान मिलता नहीं था। अन्त तक सारी जनता एक दूसरे के विरुद्ध ही दिखाई देने के कारण मेरा मन उद्विग्न हुआ।"

राहुल का जन्म

एक दिन राजकुमार प्रसन्न मुद्रा में थे। उन्होंने वह दिन राजोद्यायान में बिताने का विचार किया और वे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उद्यान में मनोरंजन करने लगे। उन्होंने उस वाटिका की सुन्दर निर्मल पुष्करिणी में स्नान किया, और स्नान करके एक स्वच्छ शिला पर विराजमान हुए। सेवकगण उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनाने लगे। वस्त्रालंकारों से विभूषित हो वह रथ पर सवार हुये। उसी समय उन्हें खबर मिली कि राजकुमारी गोपा ने एक पुत्र-रत्न प्रसव किया है। यह सुनकर वह विचार करने लगे कि यह बालक हमारे संसार-त्याग के संकल्प-रूपी पूर्णचन्द्र को ग्रसने के लिये राहु-रूप उत्पन्न हुआ है, बोले—राहु आया है। प्राणप्रिय पुत्र के मुख से "राहुल" शब्द सुनकर महाराज शुद्धोदन ने अपने पौत्र का नाम "राहुल कुमार" रखा। उसी समय राजकुमार सिद्धार्थ की आयु २८ वर्ष की थी। राहुल कुमार की उत्पत्ति से महाराज शुद्धोदन के आनंद का ठिकाना न रहा। राजभवन में भाँति-भाँति का हर्षानंद मनाया जाने लगा। याचकों और दीन-दुखियों को महाराज ने अपरिमित दान दिया। कपिलवस्तु नगरी आनन्दोत्साह से परिपूर्ण हो गई।

कृशा गौतमी को उपहार

इधर वह आनंद हो रहा था, उधर राजकुमार सिद्धार्थ संसार-त्याग के संकल्प में निमग्न, रथ पर विराजमान हो, उद्यान से राजभवन को लौट रहे थे। जब वे नगर के एक सुसज्जित राजमार्ग से निकले, तो अपने कोठे पर बैठी हुई कृशा गौतमी नाम की एक सुन्दरी नवयुवती सेठ-कन्या ने राजकुमार सिद्धार्थ के अनुपम सुन्दर रूप को देखकर कहा—"धन्य है वह पिता जिसने तुम्हारा जैसा पुत्र पाया, धन्य है वह, माता जिसने तुम्हें जन्म दिया, और पाला-पोसा, और धन्य है वह

रमणी, जिसे तुमको अपना प्राणपति कहने का सौभाग्य प्राप्त है।" राजकुमार ने इस प्रशंसा को सुन लिया। वह कृशा-गौतमी को संबोधित करके बोले—"धन्य हैं वे जिनकी राग और द्वेष-रूपी अग्नि शांत हो गई है, धन्य हैं वे जिन्होंने द्वेष, मोह और अभिमान को जीत लिया है, धन्य हैं वे जिन्होंने संसार स्रोत का पता लगा लिया है, और धन्य हैं वे जो इसी जीवन में निर्वाण-सुख प्राप्त करेंगे। भद्रे, मैं निर्वाण-पथ का पथिक हूँ।" यह कहकर उन्होंने अपने गले का बहुमूल्य रत्न-हार उतार कर उसके पास भेज दिया। राजकुमार के गले का हार पाकर कृशा गौतमी अत्यंत हर्षित हुई, वह समझी, राजकुमार उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गए हैं, और उसे यह प्रेमोपहार भेजा है।

पिता से गृह-त्याग की आज्ञा माँगना

इस प्रकार संसार त्याग की भावना और वैराग्य से परिपूर्ण हृदय राजकुमार सिद्धार्थ घर आये। किन्तु घर के उस आनन्द-महोत्सव में उनका मन तनिक भी अनुरंजित नहीं हुआ, उनके चित्त में वैराग्य की तीव्र तरंगे उठकर उन्हें शीघ्र गृह-त्याग के लिये विवश करने लगीं। एक दिन उन्होंने विचारा कि चुपके से घर से भाग जाना ठीक नहीं है। पिता जी से इस विषय में अनुमति लेनी चाहिये। वह अपने पिताजी के निकट गये और उनसे नम्रता पूर्वक निवेदन किया कि 'भगवन्! आपके पौत्र का जन्म हो गया, अब मुझे गृह-त्याग की आज्ञा दीजिये। क्योंकि संसार के सुखों में मेरा चित्त नहीं रमता, जन्म, जरा, मरण, व्याधि के दुःख दूर करने की चिन्ता व्याकुल किए रहती है। मैं किस प्रकार इनसे निवृत्त होकर सर्वज्ञता और निर्वाण लाभ कर सकूँगा, इसके अन्वेषण के लिये मुझे गृह-त्याग करना अति श्रेयस्कर प्रतीत होता है। मैं आज ही गृह-त्यागी होना चाहता हूँ।"

प्राणप्रिय पुत्र के मुख से यह बात सुनते ही महाराज शुद्धोदन अवाक् हो गये। थोड़ी देर निस्तब्ध रहने के बाद वे व्यथित-हृदय

और गद्‌गद् स्वर से कहने लगे—कुमार! यह तुम क्या कहते हो ? तुमको किस बात का दुःख है ? किस बात की कमी है ? तुम अतुल ऐश्वर्य के स्वामी हो ? सहस्रों सुन्दरियाँ अपने मधुर गान और वीणा-वादन से तुम्हें प्रसन्न रखने के लिये व्याकुल रहती हैं। सहस्रों दास-दासी तुम्हारी आज्ञा-पालन के लिये तुम्हारा मुख देखा करते हैं। परम गुणवती, रूपवती और विदुषी गोपा तुम्हारी जीवन-सहचरी है। फिर तुम किस लिये गृह त्यागने की इच्छा करते हो ? बेटा तुम्हीं हमारे प्राणों के एक मात्र अवलंब हो। तुम्हें देखकर मैं परम सुखी रहता हूँ, मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा ? इसलिये घर छोड़ना उचित नहीं। तुम जो कुछ चाहो, वह यहा उपस्थित कर दिया जाय।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी; यदि आप चार बातें मुझे दे सकें, तो मैं गृह-त्याग का संकल्प छोड़ सकता हूँ। मैं कभी मरूँ नहीं, बूढ़ा न होऊँ, रोगी न होऊँ और कभी दरिद्र न होऊँ।"

राजा ने कहा—"बेटा! ये तो सब प्राकृतिक बातें हैं। मनुष्य-मात्र के लिये इनका होना आवश्यक है। प्रकृति के नियमों का कौन लंघन कर सकता है। मनुष्य अपने जीवन भर सुखी रहने का केवल प्रयत्न कर सकता है।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी! मैं उस ज्ञान को प्राप्त करूँगा जिसके द्वारा मैं जरा-मरण-व्याधि से दुःखित जीवों का उद्धार कर सकूँ।"

गृह-त्याग

यह बात सारे राज-परिवार में फैल गई। राजा और राजपरिवार के लोग इस समाचार से बहुत दुःखी हुये। राजा को शंका समा गई। उन्होंने पहरा-चौकी का प्रबंध किया। राजकुमार से सब लोग सतर्क रहने लगे। इधर महाराज के प्रयत्न से उस दिन से राजकुमार का

प्रमोद भवन नृत्य-गान से सब समय परिपूर्ण रहने लगा। देव कन्याओं के समान सुन्दरी ललनाएं स्त्री-सुलभ-हाव-भावों से हर समय उन्हें लुभाने का प्रयत्न करने में लगी रहीं। किन्तु राजकुमार का हृदय रागादि मलों से मुक्त हो गया था, अतः इस मार-सेना का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। एक दिन, प्रभात-काल में दैवी प्रेरणा से वशीभूत हुई एक रमणी अपने ललित कंठ से एक प्रभाती गाने लगी, जिसे सुनकर राजकुमार की निद्रा भंग हुई। उस जागरोन्मुख निस्तब्ध प्रभात में वह उस गंभीर ज्ञान-पूर्ण संगीत को सुनने लगे। सुनते-सुनते उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और संसार की अनित्यता मूर्तिमान होकर उनकी आँखों के आगे नाचने लगी। राजकुमार ने उसी समय संकल्प कर लिया कि आज मैं अवश्य गृह-त्याग करूँगा।

उस दिन राहुल कुमार सात दिन के हुए थे। महाराज ने उस दिन विशेष उत्सव किया था। प्रमोद-भवन में स्त्रियों का महानृत्य हो रहा था। वे अपनी अनुपम नृत्य-कला से राजकुमार का चित्त अपनी ओर आकर्षित करती थीं। किंतु उनका यह प्रयत्न निष्फल हुआ। राजकुमार राग से विरक्त चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो थोड़ी ही देर में सो गये। नर्तकियों ने देखा, राजकुमार तो सो गए, अब हम किसके लिये नाचें-गायें, अतः वे भी जहाँ की तहाँ सो गईं। किन्तु थोड़े समय पश्चात् राजकुमार उठे और अपने पलँग पर आसन मार कर बैठ गये। उस समय उस सुरम्य महाप्रांगण में सुगंधित तैल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। उनके शीतल शुभ्र प्रकाश में राजकुमार ने देखा— वह सुर सुन्दरियां इधर-उधर अचेत पड़ी हैं। किसी के मुँह से लार बह रही है, कोई अपने दांत कटकटा रही है, किसी का मुँह खुला है, कोई बर्रा रही है, कोई ऐसी बेहोश है कि उसको अपने वस्त्रों का कुछ ध्यान नहीं है और वह उसे ढक नहीं सकती। सब बेखबर सो रही हैं, केवल प्रकाशमान दीपक शूँ-शूँ शब्द से उनकी इस दशा पर हँस रहे हैं। इस दृश्य से राजकुमार का विरक्ति भाव और भी दृढ़ हो गया।

उन्हें इन्द्र-भवन की तरह सुसज्जित प्रमोद-भवन सड़ी हुई लाशों से परिपूर्ण श्मशान के समान प्रतीत हुआ। वैराग्य के तीव्र वेग से वह उठ खड़े हुए और महाभिनिष्क्रमण के लिये उद्यत हो गये।

वह उस स्थान पर गये, जहां उनका सारथी छंदक रहता था। उन्होंने छंदक को पुकार कर आज्ञा दी—"घोड़ा तैयार करो।" छंदक आज्ञानुसार उस अर्ध-निशा में कंथक घोड़े को सजाने लगा। 'कंथक' मानो समझा हो कि आज मेरे स्वामी की मुझ पर अंतिम सवारी है। वह व्यथित होकर ज़ोर से हिनहिनाया जिससे नगर गूँज उठा। संसार त्यागने से पूर्व राजकुमार की इच्छा हुई कि अपने पुत्र का मुख एक बार देखकर अपना प्यार उसे दे दें। वह राजकुमारी गोपा के कमरे में गए। दीपकों के उज्जवल प्रकाश में उन्होंने देखा, दुग्ध फेन के समान धवल पुष्पों से सुसज्जित शय्या पर राहुल-माता सो रही है, और उसका हाथ, पार्श्व में लेटे हुए राहुल कुमार के मस्तक पर है। उन्होंने चाहा, पुत्र को गोद में ले लें, परन्तु यह सोचकर कि ऐसा करने से गोपा जाग उठेगी, और मेरे गृह त्याग में विघ्न उपस्थित होगा। उन्होंने पुत्र मोह को जीत लिया। मोह का राजा मार लज्जित हो गया, देवगण हँस दिये। राजकुमार कमरे से निकल आये और प्रमोद-भवन से बाहर होने का विचार करने लगे। किन्तु महाराज की आज्ञा से महल के फाटक और नगर द्वारों पर सर्वत्र पहरे का कठोर प्रबन्ध था। तिस पर भी सुदृढ़ लोह-द्वार अपने आप खुल गये। पहरेदार और दास-दासी सब गहरी नींद में सोये पाये गये!

राजकुमार महल से उतरे। 'छंदक' सुसज्जित 'कंथक' को लिये खड़ा था। 'कंथक' सामान्य घोड़ा न था। वह कान से पूंछ तक १८ हाथ लम्बा और शंख के समान श्वेत था। राजकुमार उस पर सवार हुये। छंदक ने उसकी पूंछ पकड़ ली। इस प्रकार रव-हीन गति से कुमार आषाढ़ पूर्णिमा की उज्जवल अर्धनिशा में नगर के महाद्वार से नगर से बाहर हुए। किं कुशल गवेषी वह बोधिसत्व, राजकुमार

सिद्धार्थ एक ही रात में शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम इन तीन राज्यों को पार कर लगभग तीस योवन की दूरी पर अनोमा नामक नदी के तट पर पहुँचे।

अनोमा नदी आठ ऋषभ (१२८ हाथ) चौड़ी होकर महावेग से वह रही थी। बोधिसत्व ने कंथक को एड़ी लगाई, छंदक उसकी पूँछ में लटक गया, कंथक एक ही छलाँग में आकाश-मार्ग से नदी पार कर गया। नदी—पार करके नरम वालुका पर घोड़े से उत्तर बोधिसत्व ने कहा—"छंदक ! अब तुम घर लौट जाओ, मैं प्रव्रजित (संन्यासी) हूँगा।" इतना कहकर उन्होंने तलवार से अपने केश कतर डाले, इसके पश्चात वह अपने वस्त्राभूषण उतारने लगे। उस समय श्रमणों के पहनने योग्य साधारण वस्त्रों को पहनकर अपने राजसी वस्त्राभूषण देते हुये बोधिसत्त्व ने छंदक से कहा—जाओ, पिता से कहना, बुद्ध होकर मैं उनसे साक्षात्कार करूँगा।"

प्रदक्षिणा और प्रणाम करके छंदक चल दिया। कंथक को स्वामी वियोग से मर्माहत पीड़ा हुई। शोक से उसका कलेजा फट गया और स्वामी की आँख से ओझल होते ही वह गिर पड़ा, और अपना शरीर त्याग दिया ! कंथक की मृत्यु से दोहरी चोट खाकर छंदक अत्यन्त दुःखित हुआ, किन्तु स्वामी की आज्ञा पालन का भार उस पर था, इसीलिये रोता-विलाप करता, नगर को वापस आया।

छंदक से सब समाचार सुनकर महाराज शुद्धोदन अत्यन्त दुखित हुये, किन्तु दर्शनों की प्रत्याशा में जीवित रहे।

इस प्रकार प्रव्रजित हो बोधिसत्व सिद्धार्थ ने उसी प्रदेश के 'अनुपिया' नामक आम्रवन में एक सप्ताह बिताया। उसके बाद वह 'रैवत' नामक एक ऋषि से मिले और वहाँ से राजगृह (ज़िला पटना) को चल दिये। मगध की राजधानी राजगृह पहुँचकर बोधिसत्त्व भिक्षा के लिये निकले। उनका अनुपम सौंदर्य देखकर नगरवासी स्तब्ध रह गये। यह कोई देवता हैं, या कोई ऋद्धिमत पुरुष हैं; मनुष्य तो प्रतीत

नहीं होते—ऐसा अलौकिक रूप तो मनुष्य का नहीं हो सकता, इस प्रकार की चर्चा करते हुए सभी उनको भिक्षा देने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु महापुरुष सिद्धार्थ ने "बस, इतना मेरे लिये पर्याप्त है।" कह कर थोड़ी सी भिक्षा ग्रहण की और शीघ्र ही नगर से बाहर चले गये। पाण्डव पर्वत की छाया में बैठे, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आंत उलट कर मुँह से निकलते जैसे मालूम दिये। उस दिन तक उन्होंने उससे पूर्व ऐसा भोजन ग्रहण न किया होने से, उस प्रतिकूल भोजन से दुःखित हुए अपने आपको, अपने ही यों समझाया:—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल में तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी गुदराधारी भिक्षु को देख कर सोचता था कि मैं भी कभी इस तरह भिक्षु बन कर भिक्षा मांग कर खाऊँगा। क्या वह भी समय था? और यही सोच कर घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है?" इस प्रकार आपने ही अपको समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राजकर्मचारियों ने यह समाचार राजा को दिया। महाराज बिम्बिसार को उनके दर्शनो की इच्छा हुई। दूसरे दिन जब बोधिसत्व भिक्षा के लिये नगर में आये, तो महाराज बिम्बिसार ने उन्हें उत्तम भिक्षा भिजवाई, बोधिसत्त्व उसे लेकर नगर के बाहर पांडव (रत्नकूट) पर्वत के निकट चले गये और वहीं, पर्वत की छाया में, भोजन किया। महाराज बिम्बिसार ने वहीं जाकर उनके दर्शन किये और उनसे प्रार्थना की—"महाराज! मेरा यह समस्त मगध-राज्य आपके चरणों में समर्पित है। आप यहीं रहिये और चल कर राज-प्रासाद में वास कीजिए।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"महाराज! यदि राज्य-सुख भोगने की मुझे इच्छा होती, तो मैं अपने ज्ञाति बन्धुओं का स्वदेश ही क्यों छोड़ता? सांसारिक भोगों को मैंने त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की है, मैं अब बुद्धत्व ज्ञान लाभ करूँगा।" यह सुनकर महाराज चुप हो गये, और नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"बुद्धत्व ज्ञान लाभ करके आप मुझे

अवश्य अपने दर्शन देकर कृतार्थ कीजियेगा।" बोधिसत्व ने महाराज का इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार राजा से वचनबद्ध होकर बोधिसत्व मगध के तत्कालीन सुविख्यात विद्वान आचार्य आलार कालाम के आश्रम में गए। आश्रम में उस समय तीन सौ विद्यार्थी अध्ययन करते थे। आचार्य ने बोधिसत्व का प्रेमपूर्ण स्वागत करते हुए उनसे अपने निकट रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्व ने कुछ काल उनके पास रहकर उनसे 'समाधि-तत्व' को सीखा। किंतु समाधि भावना को सम्यक् संबोधि के लिए अपर्याप्त समझ आचार्य से विदा होकर परमतत्व की प्राप्ति के लिए खोज में आगे बढ़े और दूसरे सुप्रसिद्ध दार्शनिक उद्दालक-पुत्र आचार्य रुद्रक के पास गये। आचार्य रुद्रक के आश्रम में सात सौ विद्यार्थी दर्शन शास्त्र का अध्ययन करते थे। आचार्य ने भी बोधिसत्व से अत्यन्त प्रेम भाव से आश्रम में रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्व ने आचार्य के पास रहकर अभिसंबोधि की जिज्ञासा की। आचार्य ने क्रमशः अपने समस्त दार्शनिक ज्ञान का निरूपण किया, किंतु बोधिसत्व ने उसे सम्यक् संबोधि के लिए अपूर्ण समझकर आचार्य से विदा ली। बोधिसत्व की प्रखर प्रतिभा और अनुपम जिज्ञासा देखकर उस आश्रम के ५ अन्य ब्रह्मचारी भी उनके साथ हो लिए। ये पांचों ब्रह्मचारी बड़े ही कुलीन थे, इन्हें बौद्ध ग्रन्थों में "पंच वर्गीय ब्रह्मचारी" लिखा गया है। ये कौण्डिन्य आदि पांचों ब्रह्मचारी बोधिसत्व को अलौकिक पुरुष समझकर उनकी सेवा और परिचर्यादि के द्वारा उनकी भाड़ु-बर्दरी में लगे रहे।

तपश्चर्या

आचार्य रुद्रक के आश्रम से चलकर बोधिसत्व कई दिनों में गया में गयाशीर्ष पर्वत पर पहुँचे। वहां विहार करते हुए उन्होंने स्थिर किया कि प्रज्ञा लाभ करने के लिए तप करना चाहिये। अतएव तप के लिए

उपयुक्त स्थान की खोज करते हुए वे 'उरुवेला' प्रदेश में पहुँचे। यह स्थान निरन्जना (फल्गू) नदी के निकट है। इसे अत्यन्त रमणीय और तप के योग्य स्थान समझकर बोधिसत्व ने वहां आसन जमा दिया और तप करने लगे। उन्हें तप-निरत देखकर कौंडिन्य आदि पांचों ब्रह्मचारी उनकी परिचर्या करने लगे।

उन्होंने वहां छः वर्ष तक दुष्कर तप किया। कुछ काल तक वह अक्षत चावल और तिल खाकर रहे। फिर उसे भी त्यागकर अनशन व्रत करके केवल जल पीकर रहने लगे। इस कठोर तप से उनका कंचन वर्ण शरीर सूखकर काला हो गया। वह केवल अस्थि पंजर मात्र रह गया, आंखे गड्ढे में घुस गईं और नाक-कान के रन्ध्र सूख कर आर पार दिखने लगे। शरीर केवल हड्डियों का कंकाल दिखाई देने लग गया। वह रेचक, कुम्भक, पूरक तीन प्रकार की प्राण-क्रियाओं से परे प्राण-शून्य (श्वास-रहित) ध्यान करने लगे। इस महाकठिन ध्यान से अत्यन्त क्लेश-पीड़ित हो एक दिन मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। ब्रह्मचारियों ने समझा वह मर गया है, किंतु वह उस समय समाधि की समस्त भूमियों का अतिक्रमण करके असंप्रज्ञात निर्बीज समाधि से परे एक अनिर्वचनीय महाशून्य-समाधि में विहार करते थे। उस अत्यंत अगम महासमाधि से निकल कर जब वह क्रमश: संप्रज्ञात-समाधि भूमि में आए, तो निश्चय किया कि "कठोर तप से बुद्धत्व लाभ नही होगा। सर्वज्ञता-लाभ का यह मार्ग नहीं है। अत्यन्त काय-क्लेश और अत्यन्त सुख दोनों का त्याग करके मध्यम मार्ग का अनुगमन करके संयमी जीवन-यापन करना ही समीचीन है।" ऐसा निश्चय करके उन्होंने संकेत द्वारा ब्रह्मचारियों से सूक्ष्माहार की इच्छा प्रकट की। ब्रह्मचारी उन्हें क्रमशः जल और मूंग का जूस आदि देने लगे। धीरे-धीरे जब उनके शरीर में बल का संचार हुआ तब वह ग्रामों में जाकर भिक्षाचर्या करने लगे। उस समय वह पांचो ब्रह्मचारी यह सोचकर कि जब तप से इन्हें प्रज्ञा लाभ नहीं हुई, तब अब भोजन करने से कैसे लाभ होगी,

सोच उनका साथ छोड़कर वे वहां से १८ योजन दूर, ऋषिपत्तन (वर्तमान सारनाथ, बनारस) चले गए।

सुजाता का खीर दान

उस समय उरुवेला-प्रदेश के सेनानी-ग्राम में सेनानी-नामक कुनबी-परिवार की सुजाता नामक एक कन्या ने एक वट-वृक्ष से यह प्रार्थना की थी कि वयः प्राप्त होने पर यदि उसका विवाह किसी अच्छे घर में उसी के समान सुन्दर और सुयोग्य वर के साथ होगा, और पहले ही गर्भ में यदि उसे सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी तो वह प्रतिवर्ष वैशाख पूर्णिमा को वट देवता की सहस्र-खर्व खीर से बलिपूजा करेगी। उनकी वह कामना पूरी हुई और उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वट-देवता की पूजा की तैयारी की। फिर वैशाख-पूर्णिमा के दिन प्रभात काल में अपनी कपिला गायों को दुहवाया, और उनके उस अत्यन्त मधुर गाढ़े और पुष्टिकर दूध को चांदी के नये बर्तन में लेकर आग जला उसने अपने हाथ से अक्षत चावलों की खीर बनाना आरम्भ किया।

जिस समय वह खीर बना रही थी, उसने अपनी पूर्णा नाम की दासी को उस वट वृक्ष के नीचे स्थान स्वच्छ कर आने को भेजा, जहां वह पूजा के लिए जाने वाली थी। पूर्णा जिस समय स्थान परिष्कार करने के लिए वटवृक्ष के नीचे पहुँची, उस समय उसने वहां पद्मासन से विराजमान बोधिसत्व को देखा और उसने यह भी देखा कि बोधिसत्व के कंचनवर्ण शरीर स एक दिव्य आभा का विकास हो रहा है, जिससे वह समस्त वट वृक्ष समालोकित हो रहा है। पूर्णा ने समझा कि मेरी स्वामिनी की पूजा ग्रहण करने के लिए वट देवता वृक्ष से उतर कर साक्षात् बैठे हैं और पूजा की प्रतिक्षा कर रहे हैं। अत्यन्त हर्षित हो जल्दी से जाकर यह शुभ-संवाद उसने अपनी स्वामिनी को सुनाया। वट देवता उसकी पूजा ग्रहण करने के लिए बैठे प्रतिक्षा कर रहे हैं,

यह सुनकर सुजाता भी आनन्द से उन्मत्त हो उठी। और कहा "अगर यह बात सही है तो तू आज से मेरी ज्येष्ठ पुत्री होकर रह" कह कर एक ज्येष्ठ पुत्री के योग्य वस्त्रभूषण आदि उसको दिये।

सुजाता पुनीत प्रेम और विशुद्ध श्रद्धा से तैयार की हुई उस उत्तम खीर को एक लक्ष मुद्रा के मूल्य के एक अति उत्तम सुवर्ण के थाल में परोसा, और ढक्कन से ढक कर एक स्वच्छ वस्त्र में बाँध दिया। फिर स्नान करके सुन्दर वस्त्राभूषणों को पहन और उस थाल को अपने सिर रख पूर्णा के साथ उस वृक्ष के नीचे गई। वहां बोधिसत्व को दिव्य आभा वितरण करते हुए विराजमान देखकर वह अत्यन्त आनन्दित हुई और वट देवता समझ शिर से थाल उतारकर माथा झुका दूर ही से प्रणाम किया। फिर थाल को खोल एक हाथ में थाल और दूसरे में सुगंधित पुष्पों से सुवासित स्वर्णमय जलपात्र लेकर वह बोधिसत्त्व के निकट जा कर खड़ी हुई और देवता से भेंट ग्रहण करने की भावना करने लगी।

अत्यन्त दुष्कर तपश्चर्या से क्षीण काय एवं अलौकिक तेज विशिष्ट बोधिसत्त्व ने सुजाता की भावना को तुरन्त समझ लिया। वह उस श्रद्धापूर्ण भेंट को ग्रहण करने के लिए अपना भिक्षापात्र उठाने लगे, किन्तु बोधिसत्व ने अपना भिक्षापात्र न देखकर प्रेम पुलकित सुजाता का वह थाल सहित खीर और जल पात्र ग्रहण करने के लिए अपने दोनों हाथ फैलाए। महाभाग्यवती सुजाता ने पात्र-सहित खीर को महापुरुष के कर-कमलों में अर्पण किया। बोधिसत्व ने सुजाता की ओर अमृतमय दृष्टि से देखा। सुजाता समझी, देवता वर मांगने को कह रहे हैं। वह बोली—"देव! आपके प्रसाद से मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मेरी कामना पूर्ण होने पर मैं सहस्त्र गो खर्व से खीर बनाकर आपको अर्पण करूंगी। कृपा करके मेरी इस भेंट को ग्रहण कीजिए औ इसे लेकर यथारुचि स्थान को पधारिए। जैसा मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है वैसे ही आपका भी पूर्ण हो।" अहा!

भक्ति विह्वल नारी का मातृ हृदय वर मांगने की जगह आशीर्वाद देने लगी। बोधिसत्व ने ईषत् मुसकान से उसका आशीर्वाद ग्रहण किया भूरिभागा सुजाता पात्र-सहित खीर दान करके अपने घर चली गई।

बोधिसत्व ने पिछली रात को ही कई लक्षणों को देखकर निश्चय किया था कि आज मैं अवश्य ही बुद्धत्व-लाभ करूंगा। अतः रात बीतने पर प्रभात-काल ही शौच आदि से निवृत्त हो वह उस वट वृक्ष के नीचे आकर बैठे थे और भिक्षाकाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। जिस समय बोधिसत्व इस प्रकार बैठे हुए भिक्षार्थ बस्ती में जाने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसी समय पूर्णा ने आकर उनके दर्शन किए, और "मेरी स्वामिनी आप की पूजा के लिए बलि-सामग्री लेकर आ रही है" कहकर चली गई, और फिर सुजाता ने आकर खीर दान किया।

बुद्ध पद का लाभ

सुजाता द्वारा दी गई खीर का भोजन करने के बाद दिन का शेष समय पास की ही उस वृक्षों की कुञ्ज में बिता कर सायंकाल बोधिसत्व बोधिवृक्ष (पीपल) के मूल में आये।

उसी समय श्रोत्रिय नामक घसियारा घर जाता हुआ उधर से आ निकला। स्वभावानुसार बोधिसत्व का तृणों का आसन सुला हुआ देख नई तृण की आठ मुष्टि दी। बोधिसत्व ने उस तृण को वृक्ष मूल में बिछा, वृक्ष की ओर पीठ कर दृढ़ चित्त हो कर कि—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें ही क्यों न बाकी रह जाय। चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जांय, लेकिन तो भी अपनी ईच्छित परम ज्ञान—सम्यक सम्बोधि—को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा।" ध्यान पर बैठे।

इस प्रकार कृत संकल्प हो पर्यंकबद्ध हुए बोधि ज्ञान के अन्वेषी उस बोधिसत्व को नाना प्रकार की प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक

दुश्चिन्ताएं आ घेरीं परन्तु वे दुश्चिन्ताएं उन्हें अपने ध्येय से हटा न सकीं।

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते-रहते मार की उस सेना को परास्त किया।

ध्यान रत, एकान्त-चित्त, दृढ़-प्रतिज्ञ उस महापुरुष बोधिसत्व ने उस रात्रि के प्रथम याम में अद्‌भुत-दिव्य दृष्टि पाई। द्वितीय याम में पूर्वानुस्मृति ज्ञान तथा अन्तिम याम में उन्होंने कार्य कारण पर आधारित अपना द्वादश प्रतीत्य समुत्पाद का आविष्कार कर साक्षात्कार किया।

उनके बारह पदों के प्रत्यय-स्वरूप प्रतीत्य - समुत्पाद को आवर्त-विवर्त की दृष्टि से अनुलोम (आदि से अन्त की ओर) प्रतिलोम (अन्त से आदि की ओर) मनन किया कि—

"अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नामरूप के कारण छः आयतन, छः आयतनों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति, अर्थात् जन्म के कारण जरा, (= बुढ़ापा) मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह संसार जो (केवल) दुःखों का पुंज है, उसकी उत्पत्ति होती है। अविद्या के अ-शेष (= बिलकुल) विराग से, अविद्या का नाश होने पर संस्कार का विनाश होता है। संस्कार-विनाश से विज्ञान का नाश होता है। विज्ञान-नाश से नाम रूप का नाश होता है। नाम, रूप नाश से छः आयतनों का नाश होता है। छः आयतनों के नाश से स्पर्शनाश होता है। स्पर्श-नाश से वेदना-नाश होता है। वेदना-नाश से तृष्णा-नाश होता है। तृष्णा-नाश से उपादान-नाश होता है उपादान-नाश से भव-नाश होता है। भव-नाश से जाति-नाश होता है। जन्म के नाश से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-

विकार और चित्त-खेद नाश होते हैं। इस प्रकार इस केवल दुःख पुञ्ज का नाश होता है।"

इस प्रकार विचार करते हुए दिन की लाली फटते समय बुद्धत्व (= सर्वज्ञता) ज्ञान का साक्षात्कार किया। उस समय उन्होंने उदान वाक्य कहा :—

अनेक जाति संसारं संधाविस्सं अनिब्बिसं
गहकारं गवेस्संतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।
गहकारक दिट्ठोसी पुन गेहं न काहसि
सब्बाते फासुका भग्गा गहकूटं विसंङ्खतं।
विसंङ्खार गतं चित्तं तण्हान खय मज्झगा॥

"दुःखदायी जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन! अब मैंने तुझे देख लिया। अब तू फिर गृह-निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण को प्राप्त हो गया। तृष्णा का क्षय देख लिया।"

इस उदान वाक्य (प्रीति वाक्य) को कहकर वहाँ बैठे भगवान् तथागत बुद्ध के मन में हुआ—मैं इस बुद्ध आसन के लिये असख्य काल तक दौड़ता रहा। इसी आसन के लिये मैंने इतने समय तक प्रयत्नशील रहा। अतः मेरा यह आसन जय-आसन है। श्रेष्ठासन है। यहां इस आसन पर बैठे मेरे संकल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहां से नहीं उठूँगा। यहीं सोच ध्यानों में रह, सप्ताह भर एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते रहे।"

फिर असंख्य काल में पूरी की गई पारमिताओं की फल प्राप्ति के स्थान को निर्निमेष दृष्टि से देखते एक सप्ताह बिताया। इसी स्थान का नाम पश्चात् काल में अनिमिस चेतीय (अनिमेष चैत्य) हो गया।

तब वज्रा असन और खड़े होने के बीच की भूमि को चंक्रमण भूमि बना, पूर्व से पश्चिम को रतन-भर चौड़े, रत्न-चंक्रमण पर चंक्रमण करते हुए सप्ताह बिताया। उस स्थान का नाम "रत्न-चंक्रमण चेतीय" पड़ा।

चौथे सप्ताह में वहां आसन पर बैठे, अभिधर्म को विचारते हुए सप्ताह बिताया। उसके बाद वह स्थान "रतन-घर चैत्य" के नाम से कहलाने लगा।

इस प्रकार बोधि-वृक्ष के समीप चार सप्ताह बिताकर पांचवें सप्ताह बोधि-वृक्ष से चलकर जहां अजपाल बरगद (= न्यग्रोध) है, वहां चले गये। वहां भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति सुख का आनन्द लेते ही बैठे रहे। फिर मुचलिन्द नामक एक वृक्ष के और फिर राजायतन वृक्ष के नीचे आसन लगाकर ध्यान-रत हो विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सप्त सप्ताहो में भगवान् ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की और न भोजन ही किया। सारे समय को ध्यान सुख, मार्ग सुख और फल प्राप्ति के सुख में ही व्यतीत किया।

धर्म प्रचार

उस समय तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी पांच सौ गाड़ियों के साथ उत्कल देश से मध्य-देश (पश्चिम-देश) को जा रहे थे। रास्ते में भगवान् को देख उनसे प्रभावित हुए और भगवान् को आहार देने के लिये अनुप्रेरित हो वे सत्तू और मधुपिण्ड (पूए) ले, शास्ता के पास जा प्रार्थना की भगवन्! कृपा करके इस आहार को ग्रहण करें।" भगवान् के भोजन ग्रहण करने के उपरान्त उन दोनों भाइयों ने बुद्ध और धर्म को शरण ग्रहण कर दो वचन से तथागत के शासन में प्रथम उपासक हुए।

भिक्षुओं ! स्वयं जन्मने के स्वभाव वाले मैंने जन्मने के दुष्परिणाम को जानकर अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को खोजता अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को पा लिया। स्वयं जरा-धर्म वाला होते हुए मैंने जरा-धर्म के दुष्परिणाम को जानकर जरा-रहित, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को खोज, अजर, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को पा लिया। स्वयं व्याधि धर्मा हो, व्याधि-धर्म रहित हो, स्वयं मरण-धर्मा हो, मरण धर्म रहित, स्वयं शोक-धर्म वाला हो शोक रहित, स्वयं संक्लेश (= मल) युक्त हो संक्लेश रहित हो गया। मेरा ज्ञान-दर्शन (साक्षात्कार) हो गया। मेरे चित्त की मुक्ति अचल हो गई। यह अन्तिम जन्म है, अब फिर दूसरा जन्म नहीं होगा।

तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ—

"मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर्ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क के द्वारा अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्म को पा लिया। यह जनता काम तृष्णा (आलय) में रमण करने वाली, काम-रत, काम में प्रसन्न है। काम में रमण करने वाली इस जनता के लिये, यह जो कार्य कारण पर आधारित प्रतीत्य-समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है, यह जो सभी संस्कारों का शमन, सभी मन्त्रों का परित्याग, तृष्णाक्षय, विराग, निरोध (दुःख निरोध) और निर्वाण है। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे इसको समझ न पावें तो मेरे लिये यह तरद्दुद और पीड़ा मात्रा होगी।

उसी समय मुझे कभी न सुनी यह अद्भुत गाथाएँ सूझ पड़ीं—

> यह धर्म पाया कष्ट से, इसका युक्त न प्रकाशना।
> नहीं राग-द्वेष-प्रलिप्त को है सुकर इसका जानना ॥
> गंभीर उल्टी-धार-युत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीण का।
> तम-पुंज छादित राग-रत द्वारा न सम्भव देशना ॥

ऐसा समझने के कारण, मेरा चित्त धर्म प्रचार की ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

तब बुद्ध चक्षु से लोक को देखते हुए मैंने जीवों को देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझने में सुगम, प्राणियों को भी देखा उनमें से कोई परलोक और दोष से भय करते विहर रहे थे। (क्योंकि) जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी या पुण्डरीकिनी में से कितने ही उत्पल' पद्म या पुण्डरीक जल में पैदा हो उससे बंधे उससे बाहर न निकल जल के ही भीतर डूब कर पोषित होते हैं और कोई-कोई जल में पैदा होने पर भी उससे ऊपर उठकर जल से अलिप्त ही खड़े हो जाते हैं। उसी प्रकार तथागत ने भी मनुष्यों में देखा।"—(विनय पिटक)

सारनाथ-बनारस के रास्ते पर

अनन्तर शास्ता ने विचारा कि इस प्रकार अनेक कठिनाइयों के अनन्तर प्राप्त इस नये धर्म का प्रथम अधिकारी कौन हो। कौन पुरुष है? जो इसे शीघ्र समझ सकेगा। विचार आया आलार-कालाम। पर सोचकर देखा कि उन्हें मरे हुए एक सप्ताह हो गया है। तब रुद्रक रामपुत्र का विचार आया। मालूम हुआ, वे भी उसी रात को मर गये। तब पंचवर्गीय भिक्षुओं के बारे में प्रश्न हुआ। वे लोग इस समय कहाँ हैं? उन भिक्षुओं ने साधना के समय बहुत तरह से उपकार किया है, सोचते हुए वाराणसी (बनारस के) मृगदाय में विहरने की बात मालूम कर, वहाँ जाकर धर्म का प्रकाशन करने का भगवान् ने विचार किया।

कुछ दिन तक (गया के) बोधि मण्डल के आस-पास ही भिक्षा-चार कर विहार करते रहे! आषाढ़ पूर्णिमा के दिन मृगदाय पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी की प्रातःकाल तड़के ही चीवर पहन, पात्र हाथ में ले अठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में उपक नामक एक आजीवक को उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए अपने बुद्ध होने की बात कहकर, उसी दिन शाम को ऋषिपतन-मृगदाय पहुँच गये।

पंचवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को दूर से ही आते देखकर निश्चय किया – "आयुष्मानों ? यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिये मार्ग-भ्रष्ट ही परिपूर्ण शरीर, मोटी इंद्रियों वाला, सुवर्ण वर्ण होकर आ रहा है। हम उसे अभिवादन-प्रत्युत्थान आदि न करेंगे। लेकिन एक महाकुल-प्रसूत होने से यह आसन का अधिकारी है, अतः हम इसके लिये खाली आसन बिछा देंगे।

भगवान् के मैत्री-चित्त से प्रभावित हो उनके समीप आते-आते वे अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके और उन्होंने अभिवादन-प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यों को किया। लेकिन सम्बोधि प्राप्ति के प्रयत्न में सफल होने का उन पंचवर्गीय भिक्षुओं को ज्ञान न था ! इसलिये तथागत को केवल नाम लेकर अथवा आवुसो (आयुष्मान्) कहकर सम्बोधन करते थे।

तब भगवान् ने उनसे कहा भिक्षुओं ! तथागत को नाम से अथवा 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओं ! तथागत अर्हत् है, सम्यक् सम्बुद्ध है" ऐसा कहकर तथागत ने अपने बुद्ध होने को प्रकट किया। बिछे आसन पर बैठ उत्तराषाढ़ नक्षत्र (आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन) पंचवर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित कर **धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र** का उपदेश किया।

धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र

और फिर भगवान् ने उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित किया:—

दो अन्त

"भिक्षुओं इन दो अन्तों (=चरम बातों को) प्रव्रजितों को नहीं सेवन करना चाहिये—(१) जो यह हीन, ग्राम्य, पृथक् जनों के योग्य, अनार्य जन सेवित, अनर्थों से युक्त काम वासनाओं में काम-सुख-लिप्त होना है और (२) जो यह दुःखमय, अनार्य (=सेवित),

अनर्थों से युक्त आत्म-पीड़न =काय क्लेश) में लगना है। भिक्षुओं ! इन दोनों अन्तों (=चरम बातों) में न जाकर तथागत ने मध्यम मार्ग को जाना है,. जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, सम्बोधि (=परम ज्ञान) के लिये, निर्वाण के लिये है।

मध्यम मार्ग

भिक्षुओं ! तथागत ने कौन सा मध्यम मार्ग जाना है जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, सम्बोधि के लिये, निर्वाण के लिये है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जैसे कि—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (=प्रयत्न) (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि। भिक्षुओं ! इस मध्यम मार्ग को तथागत ने जाना है जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, सम्बोधि के लिये, निर्वाण के लिये है।

१—दुःख आर्य सत्य

भिक्षुओं ! यह दुःख आर्य-सत्य है—जन्म भी दुःख है, जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है, अप्रियों से संयोग (=मिलन) दुःख है, प्रियों से वियोग दुःख है। ईच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में पांच उपादान-स्कन्ध* ही दुःख है।

२—दुःख-समुदय आर्य सत्य

भिक्षुओ ! यह दुःख-समुदय आर्य सत्य है—यह जो फिर-फिर जन्म करानेवाली, प्रीति और राग से युक्त, उत्पन्न हुए स्थानों में अभिनन्दन करानेवाली तृष्णा है, जैसे कि (१) काम-तृष्णा (२) भव-तृष्णा

---

* रूप, वेदना, संज्ञा संस्कार, विज्ञान—ये पाँच उपादान-स्कंध कहे जाते हैं।

(=जन्म-सम्बन्धी तृष्णा) (३) विभव-तृष्णा (=उच्छेद की तृष्णा)।

३—दुःख-निरोध आर्य सत्य

भिक्षुओं ! यह दुःख-निरोध आर्य सत्य है—जो उसी तृष्णा का सर्वथा विराग है, निरोध (=रुक जाना), त्याग, प्रतिनिस्सर्ग (=निकास), मुक्ति (=छुटकारा), लीन न होना है।

४—दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य

भिक्षुओं ! यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है—यही आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग, जैसे कि (१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि।

चार आर्य सत्यों का तेहरा ज्ञान दर्शन

(१) यह दुःख आर्य सत्य है—भिक्षुओं ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख आर्य सत्य परिज्ञेय है—भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख आर्य सत्य परिज्ञात है'—भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, विद्या उत्पन्न हुई, आलोद उत्पन्न हुआ।

(२) 'यह दुःख समुदय आर्य सत्य है'। भिक्षुओं ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख समुदय-आर्य सत्य महातव्य (=त्याज्य=छोड़ने योग्य) है'—भिक्षुओं ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख समुदय आर्य सत्य प्रहीण (= दूर) हो गया'—भिक्षुओं !

यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पद्य हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

(३) 'यह दुःख निरोध आर्य सत्य है'—भिक्षुओं! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ प्रज्ञा उत्पन्न हुई; विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख निरोध आर्य सत्य 'साक्षात्कार करना चाहिये'–भिक्षुओं! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख निरोध आर्य सत्य 'साक्षात्कार कर लिया'–भिक्षुओं! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

(४) 'यह दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है'—भिक्षुओं! यह मुझ पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य भावना करना चाहिये - भिक्षुओं! यह मुझ पहले नहीं सुने गये धर्मों में आंख उत्पन्न हुई। ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य भावना कर लिया गया।'

भिक्षुओं! जब तक कि इन चार आर्य सत्यों का ऐसे तेहरा बारह प्रकार का यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन नहीं हुआ तब तक मैंने भिक्षुओं! यह दावा नहीं किया कि—लोक में, सभी देव-मनुष्य-सहित, श्रमण ब्राह्मण-सहित सभी प्रजा (= प्राणी) में, सर्वोत्तम सम्यक् सम्बोधि (=परमज्ञान) को मैंने जान लिया।'

भिक्षुओं! जब इन चार आर्य सत्यों का ऐसे तेहरा बारह प्रकार का यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब मैंने भिक्षुओं! यह दावा किया कि 'देवों-सहित' मार-सहित, ब्रह्मा-सहित, सभी लोक में, देव-मनुष्य-सहित, श्रमणब्राह्मण-सहित सभी प्रजा (=प्राणी) में सर्वोत्तम सम्यक्

सम्बोधि (=परमज्ञान) को मैंने जान लिया। मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया, मेरी चेतोविमुक्ति (= चित्त का मुक्त होना) अचल है, यह अन्तिम जन्म है, फिर अब जन्म लेना नहीं है।"

भगवान् ने यह कहा। पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया।

धर्म का अनुभव

इस व्याख्या व्याकरण के कहे जाने पर आयुष्मान स्थविर आज्ञात-कौडिन्य ने उपदेशानुसार ज्ञान का विकास कहते हुए, सूत्र की समाप्ति पर स्रोतापत्ति फल में स्थित हुए। तब बुद्ध वर्षाकाल के लिये वहीं ठहर गये। वष्प स्थविर पूर्वाह्न में ही स्रोतापन्न फल में प्रतिष्ठित हुए। इसी क्रम से अगले दिन भद्दिय स्थविर महानाम स्थविर, अश्वजित स्थविर—सबको स्रोत-आपत्ति फल में प्रतिष्ठित कर अगले दिन सब को एकत्रित कर अनत्त लक्षण सूत्र का उपदेश किया। देशना की समाप्ति पर पांचो स्थविर अर्हत फल में स्थित हुए।

श्रेष्ठीपुत्र यश की प्रव्रज्या ग्रहण की बात सुन कर उसके चार मित्रों ने भी विचारा कि यश जैसा धनी युवक ने जिस दीक्षा को पाया है वह साधारण न होगी और वे यश के पास जा, भगवान् से दीक्षा दिलाये जाने की याचना की। भगवान् से दीक्षा पाकर वे विमल सुबाहु, पूर्णजित् और गवाम्पति नाम के चारों युवक भी घर से बेघर हो साधना में लग चित्त के आस्रावों से मुक्त हो गये। उस समय भगवान् के ग्यारह शिष्य थे।

जैसे-जैसे भगवान् की कीर्ति फैलती गई, बनारस के अनेक सम्भ्रांत कुलों के युवक भगवान् के पास दीक्षा पाने के लिये आये। इस प्रकार तीन मास की कुल अवधि में (आषाढ़ से क्वार की पूर्णिमा तक) साठ भिक्षु भगवान् के पास ब्रह्मचर्य वास करते हुए चित्त के आस्रवों से रहित हो भगवान् के धर्म में विशारद जीवन-मुक्त हो गये थे।

भगवान् ने उन भिक्षुओं को सम्बोधित किया:—

भिक्षुओं ! जितने भी दिव्य और मानुष बन्धन हैं, मैं उन सबों से मुक्त हूँ। तुम भी दिव्य और मानुष बन्धनों से मुक्त हो जावे।

जो मनोरम रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श हैं उनसे मेरा राग दूर हो गया।

उरुवेला को

इस प्रकार तीन मास के अन्दर इकसठ अर्हत् हो गये। वर्षावास की समाप्ति पर शास्ता ने प्रवारणा कर, भिक्षुओं को आदेश दिया:—

"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं देसेथ भिक्खवे धम्मं आदि कल्याणं मज्झ कल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं परियोसान कल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।"

"भिक्षुओं ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओं ! आरम्भ, मध्य और अन्त सभी अवस्थाओं में कल्याण-कारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिशुद्ध, परिपूर्ण ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।"

इस प्रकार आदेश दे भिक्षुओं को साठ दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेला को जाते हुए भगवान् मार्ग से हटकर विश्राम के लिये कप्पासिय वन खंड में जा एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उस समय भद्रवर्गीय नामक तीस मित्र अपनी स्त्रियों सहित उसी वन खण्ड में विनोद कर रहे थे। उनमें एक के पास स्त्री न थी उसके लिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उन लोगों के नशा में हो घूमते समय, वस्त्राभूषण आदि लेकर भाग गई। मित्रों ने अपने उस मित्र की मदद में उस स्त्री को खोजते, उस वनखण्ड को ही डोलते चलते उस वृक्ष

के नीचे बैठे भगवान् को देखा। फिर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और पूछने लगे—'भन्ते! आपने किसी स्त्री को तो नहीं देखा?"

भगवान् ने कहा, कुमारों तुम्हें स्त्री से क्या?

भन्ते! हम भद्रवर्गीय तीस मित्र अपनी-अपनी पत्नियों सहित इस वन खन्ड में विनोद कर रहे थे एक की पत्नी न थी, इसलिये उसके लिये एक वेश्या लाई गई थी। भन्ते! वह वेश्या हम लोगों के नशा में ही घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई है। सो भन्ते! हम लोग मित्र की मदद में उस स्त्री को खोजते हुए इस वन खण्ड को ढूंड रहे हैं।"

"तो कुमारों! क्या समझते हो, तुम्हारे लिये क्या उत्तम होगा। यदि तुम स्त्री को ढूँढो या तुम अपने आप (आत्म) को ढूढो।"

भन्ते! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपने को ढूंढें।

"तो कुमारों! बैठो, मैं तुम्हें धर्म का उपदेश करता हूँ।"

काश्यप बन्धुओं की प्रव्रज्या

अच्छा भन्ते! कह वह भद्रवर्गीय मित्रगण भगवान् की वन्दना कर, एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उन्हें आनुपूर्वी कथा कह कर उपदेश दिया। उपदेश के अनन्तर उन कुमारों में जो सबसे पिछला था, वह स्रोतापन्न और जो सब में ज्येष्ठ था वह अनागामी हुआ। उन सबको भी 'भिक्षुओं! आओ।" वचन से ही प्रव्रजित किया। स्वयं उरूवेल पहुँच वहाँ सहस्रों जटिलों सहित उरूवेल काश्यप आदि तीन जटिल भाइयों को प्रभाव में लाकर "भिक्षुओं आओ।"—वचन से ही उन्हें भी प्रव्रजितकर, गया शीर्ष पर बैठ, आदित्यपर्य्यायसूत्र के उपदेश से उन लोगों को अर्हत भाव में प्रतिष्ठित कराया। उन तीन काश्यप बन्धुओं ने अपने सहस्रों अनुचरों के सहित केश सामग्री, जटा सामग्री, खारी और घी की वस्तुएँ अग्निहोत्र सामग्री नदी में बहा दी और बुद्ध के साथ हो लिये।

राजा बिम्बिसार की दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये उन सहस्रों अर्हन्तों के साथ राजगृह नगर के समीप स्थित लट्ठिवन उद्यान में पहुँचे।

राजा बिम्बिसार

मगध राज श्रेणिक बिम्बिसार ने अपने माली के मुँह से बुद्ध के आने की बात सुनकर बारह नहुत ब्राह्मण-गृहपतियों के साथ बुद्ध के पास पहुँचे। वहाँ उस प्रभापुंज भगवान् के चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक ओर बैठ गया। तब उन ब्राह्मण गृह-पतियों के मन में ऐसी शंका हुई कि 'क्या उरूवेल काश्यप महाश्रमण गौतम का शिष्य है अथवा महाश्रमण उरूवेल काश्यप का ? भगवान् ने अपने चित्त से उन लोगों के वितर्कों को जान उरूवेल काश्यप स्थविर को गाथा में कहा :—

उरूवेल वासी ! तपः कृशों के उपदेशक ! क्या देखकर तुमने आग छोड़ी ? काश्यप ! तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा ?

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समझकर ऐसा कहा—

"रूप, शब्द, रस, कामोपभोग तथा स्त्रियाँ ये सब यज्ञ से मिलती हैं, ऐसा कहते हैं। लेकिन उक्त ये रागादि उपाधियाँ मल हैं। यह जानकर, विरक्त चित्त हो, मैंने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।"

"काम मद में अविद्यमान, निर्लेप, शान्त, रागादि से रहित निर्वाण पद को देखकर निर्विकार, दूसरे की सहायता के पार होनेवाले (निर्वाण) पद को, देखकर मैं इष्ट और यज्ञ तथा होम से विरक्त हुआ।"

ऐसा कहने के अनन्तर (अपने शिष्य भाव के प्रकाशनार्थ) उस स्थविर ने आसन से उठ, उत्तरासंग को एक कंधे पर कर भगवान् के

पैरों पर सिर रख भगवान् से बोले - "भन्ते ! भगवान् मेरे गुरू हैं, मैं शिष्य हूँ।" इस प्रकार तथागत को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। प्रचार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "अहो बुद्ध महाप्रतापी हैं। जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, अपने को अर्हत् समझने वाले उरूवेल काश्यप को भी उनके मन रूपी जाल को काटकर दीक्षित किया।" भगवान् ने इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये महानारद काश्यप जातक कह चार आर्य सत्यों का प्रकाश किया। जिसे सुन ग्यारह नहुत ब्राह्मण गृहपतियों सहित मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार को उसी आसन पर जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान् हैं। यह वि'ज-विमल-धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। और वे सब (ग्यारह नहुत) उपासक बन गये।

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन

उस समय संजय नामक एक परिव्राजक राजगृह में कोई ढाई सौ परिव्राजकों की एक बड़ी जमात के साथ निवास करता था। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन संजय के दो प्रमुख शिष्य थे। आलोकन-विलोकन के साथ नीची नजर रखते संयम से भिक्षाचार में रत अश्वजित भिक्षु को देख सारिपुत्र परिव्राजक को हुआ—जिस तत्त्व ज्ञान की हम खोज में हैं वह तत्त्व ज्ञान प्राप्त अथवा उसकी प्राप्ति के मार्ग पर "लोक में जो आरूढ़ है, उनमें यह भिक्षु भी है। "क्यों न इस भिक्षु के पास जाकर पूछूँ ? "आवुस् ! तुम किसको गुरु करके घर से बेघर हुए हो कौन तुम्हारा गुरु है ? तुम किसके धर्म को मानते हो ?"

सारिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान् अश्वजित से कहा—

"आवुस ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं। तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल है। आवुस ? तुम किसको गुरु करके साधु हुए हो, तुम्हारा गुरु कौन है ? तुम किसका धर्म मानते हो ?"

"आवुस ! शाक्य-कुल से प्रव्रजित शाक्य पुत्र महाश्रमण जो हैं, उन्हीं भगवान् को गुरु करके मैं साधु हुआ हूँ. वही भगवान मेरे गुरु हैं। उन्हीं भगवान् का मैं धर्म मानता हूँ।"

"आयुष्मान के गुरु का क्या मत है किस सिद्धान्त को वह मानते हैं?"

"आवुस ! मैं नया हूँ। इस धर्म में अभी नया ही साधु हुआ हूँ, विस्तार से मैं तुम्हें नहीं बतला सकता, इसलिए संक्षेप में तुमसे कहता हूँ।"

"तब सारिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान अश्वजित से कहा, अच्छा आवुस ! थोड़ा बहुत जो हो कहो, सार ही को मुझे बतलाओ।" सार से ही मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे बहुत-सा विस्तार कहकर।"

तब आयुष्मान् अश्वजित ने सारिपुत्र परिव्राजक से यह धर्म-पर्याय (उपदेश) कहा—

"हेतु (कारण) से उत्पन्न होने वाली जितनी वस्तुएँ हैं, उनका हेतु है; यह तथागत बतलाते हैं। उनका जो निरोध है उसको भी बतलाते हैं, यही महाश्रमण का वाद है।"

तब सारिपुत्र परिव्राजक को इस धर्म-पर्याय के सुनने से—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशमान् है," यह विरज-विमल-धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। यही धर्म है जिससे कि शोक रहित पद प्राप्त किया जा सकता है।

"आवुस ! मैंने आज अश्वजित भिक्षु को राजगृह में अति सुन्दर ढंग से अवलोकन-विलोकन के साथ भिक्षा के लिए घूमते देखकर सोचा 'लोक में जो अर्हत हैं, यह भिक्षु उनमें से एक है। मैंने अश्वजित से पूछा - तुम्हारा गुरु कौन है? अश्वजित ने यह धर्म पर्याय कहा....हेतु से उत्पन्न ०।

तब मौद्गल्यायन परिव्राजक को इस धर्म-पर्याय के सुनने से—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशमान है"—यह विमल विरज धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ।

मौद्गल्यायन परिव्राजक ने सारिपुत्र परिव्राजक से कहा—चलो चलें आवुस ! भगवान् बुद्ध के पास । वह हमारे गुरु हैं और यह जो ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रय से हमें देखकर यहां विहार करते हैं, उनसे भी पूछ लें और कह दें, कि जैसी तुम लोगों की राय हो वैसा करो ।

तब सारिपुत्र और मोद्गल्यायन जहां वह परिव्राजक थे, वहां गए, जाकर उन परिव्राजकों से बोले—"आवुसो ! हम भगवान् बुद्ध के पास जाते हैं, वह हमारे गुरु हैं ।

भगवान् के पास जाकर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने उनके चरणों में शिर झुका कर बोले—

"भन्ते ! हमें अपना शिष्यत्व प्रदान करें ।"

"भिक्षुओं ! आओ, यह धर्म सुआख्यात है । दुःख के क्षय के लिये अच्छी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करो ।" कह कर भगवान् ने उन दो महारथियों को दीक्षित किया, जो पश्चात् काल में भगवान् के धर्म सेनापति हुए ।

महाराज शुद्धोदन का आह्वान्

भगवान् बुद्ध के धर्म-प्रवर्तन का समाचार दूर-दूर तक पहुँच गया था । देश के प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक नगर में भगवान् के धर्म-प्रचार की चर्चा थी और धर्म परायण एवं धर्म-तत्व के ज्ञाता विद्वान सत्पुरुष दूर-दूर देशों से यात्रा करके भगवान् के निकट धर्म-श्रवण करने आते थे । कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन ने भी सुना कि राजकुमार सिद्धार्थ ने अलौकिक जीवन लाभ किया है और उनके अमृतमय उपदेश को सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणी पवित्र और प्रव्रजित हो रहे हैं; पापी लोग भी अपने पापमय जीवन को त्यागकर पुण्यमय जीवन लाभ कर रहे हैं। वह अपने प्राणप्रिय अलौकिक पुत्र को देखने की लालसा से अत्यन्त व्याकुल हो उठा । उन्होंने कालउदायी नामक अपने निजी सचीव

(प्राइवेट सेक्रेटरी) को देखा। यह उनकी आन्तरिक बातों से परिचित अति विश्वासी था और था बोधिसत्व (कुमार सिद्धार्थ) का समवस्क, एक ही दिन उत्पन्न, साथ का धूलि-खेला मित्र। राजा ने उससे कहा, तात ! कालउदायी ! मैं जीते जी अपने पुत्र को देख लेना चाहता हूँ।

उदायी स्थविर सोचने लगा कि वसन्त आ गया है। लोगों ने खेत काट कर अवकाश पा लिये हैं। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है और वन-खण्ड फूलों से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। अतः यह उपयुक्त समय है सोच भगवान् के पास जाकर इस प्रकार बोले—

"भगवन् ! इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए नये पत्तों से लदकर अंगार वाले जैसे हो गये हैं। उनकी चमक अग्नि-शिखा सी है। महावीर ! ये शाक्यों के संग्रह करने का समय है। इस समय न बहुत शीत है, न बहुत ऊष्ण है, न भोजन की कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि ! यह चलने का समय है।"

शास्ता ने पूछा—"उदायी ! क्या है जो तुम मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो !"

भगवान् ! आप के पिता महाराज शुद्धोदन आपका दर्शन करना चाहते हैं, आप जाति वालों का संग्रह करें।

"अच्छा, उदायी ! भिक्षु-संघ को कहो कि यात्रा की तैयारीकरें।"

"अच्छा, भगवन् ! "कह भिक्षु-संघ को इस बात की सूचना दे दी।

कपिलवस्तु-गमन

भगवान् भिक्षुओं की मण्डली के साथ राजगृह से निकलकर, राजगृह से साठ योजन दूर कपिलवस्तु दो मास में कपिलवस्तु पहुँचे। कालउदायी भिक्षु आगे-आगे जाकर शाक्य सिंह तथागत बुद्ध के आगमन की सूचना महाराज शुद्धोदन और सम्बन्धित लोगों को दे दी।

न्यग्रोध नामक शाक्य ने शाक्य सिंह तथागत बुद्ध को अपने आराम (वन) में टिकाया।

सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन तथागत बुद्ध अपने शिष्यों सहित कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया। वहां न किसी ने उन्हें भोजन के लिये ही निमंत्रित किया और न किसी ने उनका पात्र ही ग्रहण किया।

बुद्ध ने बिना विचार-किसी स्वजन अथवा इतर जन एव धनी निर्धनी के वीथी के एक सिरे से सभी के घरों में गये।

"आर्य सिद्धार्थ कुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह सुन लोग अपने-अपने घरों से निकल-निकल देखने लगे।

आर्यपुत्र इसी नगर में राजाओं के बड़े भारी ठाट से पालकी आदि में चढ़कर घूमे और आज इसी नगर में वह शिर-दाढ़ी मुड़ा, काषाय वस्त्रधारी हो हाथ में खपड़ा ले भिक्षाचार करें, क्या यह शोभा देता है? कह, खिड़की खोलकर राहुल माता यशोधरा ने देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल वह बुद्ध शरीर नगर की सड़कों को प्रभावित कर रहा है। उसने अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखा और उनका शिर से पांव तक का वर्णन इस प्रकार आठ गाथाओं में किया:—

"चिकने, काले, कोमल घूंघर वाले केश हैं, सूर्य सदृश निर्मल तल वाला ललाट है, सुन्दर ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका युक्त नरसिंह अपनी रश्मि-जाल को फैला रहे हैं।"

महाराज शुद्धोदन को ज्ञानदर्शन

फिर जाकर राजा से कहा—"आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया, हाथ से धोती सम्भालते, जल्दी-जल्दी निकलकर वेग से जा भगवान के सामने खड़े होकर बोला, "कुमार! हमें क्यों लजवाते हो? किसलिए भिक्षा कर रहे हो? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओं के लिये हमारे यहां से भोजन नहीं मिल सकता है।"

"महाराज ! हमारे वंश का यही आचार है।

"कुमार ! निश्चय हम लोगों का वंश मनु का क्षत्रिय वंश है। इस वंश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ।"

"महाराज ! वह राजवंश तो आपका वंश है। हमारा वंश तो बुद्ध वंश है और दूसरे अनेक बुद्ध भिक्षाचारी रहे हैं, भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं। महाराज की जाति, कुल एवं धनाभिमान का मर्दन करते हुये उसी स्थान पर खड़े-ही-खड़े भगवान् ने यह गाथा कही

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय, धम्मं सुचरितं चरे।
धम्म चारि सुखं सेति, अस्मिं लोके परंहि च॥

"उद्योगी हो, आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्मचारी पुरुष इस लोक और परलोक में सुख से सोता है। सुचरित कर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म का आचरण न करे। धर्मचारी पुरुष इस लोक और परलोक में सुखपूर्वक सोता है।"

इस गाथा के द्वारा महाराज को स्रोतापत्ति-फल में स्थित किया। महाराज ने भगवान् का भिक्षापात्र ले मण्डली सहित भगवान् को महल में ले जाकर उत्तम खाद्य भोज्य-पदार्थों से संतृप्त किया।

भोजन के पश्चात् अपनी शिष्य-मण्डली के साथ भगवान् प्रस्थान करने के पूर्व उनके दर्शन, वन्दन और उपदेश श्रवण करने के लिये राहुल माता को छोड़कर राजपरिवार के प्रायः सभी स्त्री और पुरुष भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए।

राजकुमारी यशोधरा

राहुल माता को छोड़कर शेष सभी रनिवास ने आकर भगवान् की वन्दना की। साथी-परिजनों द्वारा—जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो कहकर प्रेरित किये जाने पर भी 'यदि मुझमें गुण हैं, तो

आर्यपुत्र मेरे पास आयेंगे। आने पर वन्दना करूँगी' कहकर वह तेज विशिष्टा नारी नहीं ही गई।

भोजनोपरान्त भगवान् भी उसका ख्याल कर महाराज को पात्र दे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को साथ ले राजकुमारी के शयनागार में गये और साथियों को आदेश दिया कि "राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना।" कह बिछे आसन पर बैठ गये। राहुल माता ने जल्दी से आ पैर पकड़ कर शिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। महाराज ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह-सत्कार आदि गुण को कहा—भन्ते, मेरी बेटी आपके काषाय वस्त्र पहनने को सुनकर काषाय धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुनकर एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलंग छोड़ने की बात सुनकर तख्ते पर सोने लगी। आपके माला-गन्ध आदि से विरत होने की बात सुनकर माला-गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालों के द्वारा बुलाये जाने पर भी नहीं गई। भगवान् मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

इस प्रकार राहुल माता यशोधरा की पवित्र चर्या सुनकर भगवान् सन्तुष्ट हुए और उसकी पूर्वजन्म सम्बन्धी कई कथाएँ सुनाकर उसे शान्ति प्रदान की। यशोधरा को उपदेश देकर भगवान् अपने भिक्षुसंघ समेत न्यग्रोधाराम को लौट आये।

ज्येष्ठ कुमार सिद्धार्थ (भगवान् बुद्ध) की उपस्थिति में नन्दकुमार का विवाह करा राज्याभिषेक अर्थात् अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के लिये महाराज शुद्धोदन ने आयोजन किया था। अतः राजभवन में उस दिन विशेष समारोह था।

भ्राता नन्द

भोजन के अनन्तर भगवान् अपना भिक्षापात्र नन्दकुमार के हाथ

में दे अपने आश्रम को चले। नन्दकुमार भी पात्र लिये उनके पीछे पीछे आश्रम को गये। भिक्षुओं के सम्पर्क में ला वहाँ उसे भी संघ में सम्मिलित कर लिया।

पुत्र राहुल

सातवें दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलंकृत कर, भगवान के पास यह कह कर भेजा, "तात देख! श्रमणों के उस महासंघ के मध्य में जो वह सुनहले उत्तम रूप वाले श्रमण (=साधु) हैं वही तेरे पिता हैं। जा, उनसे विरासत माँग। पास जाकर उनसे कहो—"तात! मैं राजकुमार हूं। अभिषेक करके चक्रवर्ती राजा बनूंगा। मुझे धन चाहिए। धन दें। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्नचित्त हो, "श्रमण तेरी छाया सुखमय है" अपने अनुकूल कुछ कहता रहा।

'श्रमण! मुझे दायज दें। श्रमण! मुझे दायज दें।' कहता कुमार भी भगवान के पीछे-पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नहीं लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा—"यह पिता के पास जिस धन को माँगता है, वह (धन) सांसारिक है, नाशवान है। क्यों न मैं इसे बोधिमण्डप में मिला अपना सात प्रकार का आर्य-धन दूं। इसे अलौकिक विरासत का स्वामी बनाऊँ। ऐसा सोच आयुष्मान सारिपुत्र को कहा—"सारिपुत्र! तो लो राहुल को साधु बना श्रद्धा, शील (=सदाचार), लज्जा, निन्दा से भय खाने वाला समाधि में लगा बहुश्रुत, त्यागी तथा प्रज्ञावान बनाओ।" राहुल कुमार साधु होने पर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ। उस दुःख को सह न सकने के कारण राजा शुद्धोधन ने भगवान् से निवेदन कर, वर माँगा—"अच्छा हो भन्ते! आर्य (भिक्षु)

लोग माता-पिता की आज्ञा के बिना किसी को प्रव्रजित न करें।" भगवान् ने राजा को वह वर दिया और नियम बना दिया कि भविष्य में संरक्षक माता-पिता अथवा आश्रित जन की आज्ञा के बिना कोई किसी को प्रव्रजित न करे।

अनुरुद्ध, आनन्द और उपाली आदि का सन्यास

राहुल कुमार को प्रव्रजित कर भगवान् कपिलवस्तु से चल मल्लदेश में चारिका करते मल्लों के अनुपिया ग्राम के आम्रवन में पहुँचे थे। उस समय शाक्य कुलों के तथा अन्य अनेक सम्भ्रान्त कुलों के युवक भगवान् के पास पहुँच कर भिक्षु भाव को ग्रहण करते थे।

इसी समय अनुरुद्ध, आनंद, भद्रिय, किमिल, भृगु और देवदत्त नामक छः शाक्य-वंशीय राजकुमार कपिलवस्तु से भगवान् के पास आए। इन राजकुमारों के साथ उपालि नामक एक नापित भी था। जिस समय ये राजकुमार भगवान् के निकट आ रहे थे, उन्होंने विचारा, हम लोग तो प्रव्रजित होंगे, तब इन सुन्दर वस्त्रालंकारों को पहनकर भगवान् के निकट जाने से क्या लाभ ? यह सोचकर उन राजकुमारों ने अपने बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण उतार डाले और उनकी गठरी बाँध उपाली को देकर बोले—"इसे लेकर तुम घर लौट जाओ। यह तुम्हारे जीवन भर के लिये काफी है। हम लोग प्रव्रजित होंगे।" ऐसा कह गठरी दे राजकुमार आगे बढ़े। उपालि को उस समय कुछ नहीं सूझा। बाद में उसने सोचा—"जिन वस्त्र-आभूषणों को मलमूत्र की तरह त्यागकर राजकुमार भगवान् के निकट महामूल्यवान् निर्वाण-धर्म को ग्रहण करने चले और महानीच के समान उन्हें ग्रहण करके मैं जीवन-यापन करूँ ? छीः ! छीः ! मुझसे यह न होगा। सेवक जाति में जन्म लेने के कारण मैं समाज में वैसे ही नीच जीवन व्यतीत करता हूँ अब प्रव्रज्या-रूपी महासम्पत्ति से विमुख होकर यदि मैं इन मल-मूत्र के समान परित्यक्त वस्त्राभूषणों को संग्रहण करूँ तो मैं अवश्य ही

लोक और परलोक दोनों में नीच होने के कारण महानीच प्राणी हो जाऊँगा।" ऐसा विचारकर उपालि ने उस बहुमूल्य गठरी को एक वृक्ष पर टाँगकर लिख दिया, जो इसे लेना चाहे, ले ले, इस पर किसी का स्वामित्व नहीं है और स्वयं शीघ्रता से चलकर भगवान के निकट पहुँचे एवं शाक्य-राजकुमारों के साथ प्रव्रजित होने की इच्छा भगवान से प्रकट की। समदर्शी भगवान ने उपालि नापित को सबसे प्रथम दीक्षा प्रदान की और राजकुमारों को उसके बाद। बुद्ध-धर्म की मर्यादा है कि धर्म ग्रहण करने में एक मुहूर्त भी जो प्रथम है, वह अपने परवर्ती से ज्येष्ठ होता है, अतः परवर्ती उसे "भन्ते" कहकर प्रणाम करेगा और पूर्ववर्ती उसे "आयुष्मान्" कहकर आशीर्वाद देगा। अतएव भगवान ने उपालि को इसलिये प्रथम दीक्षा दी, ताकि शाक्य-वंशीय राजकुमार प्रव्रजित होने पर भी सेवक समझकर उसका अपमान न करें। वरन् उसे अपने से ज्येष्ठ समझकर उसका सम्मान करें। ये सातों शिष्य आगे चलकर भगवान के प्रधान शिष्य हुए। उपाली विनयपिटक का आचार्य हुए। तीन भागों में विभक्त बौद्धशास्त्र में उस भाग को कहते हैं जिसमें भिक्षुओं के धर्म विनय का विधान है।

महाकाश्यप की दीक्षा

मगध के महातीर्थ नामक गांव के पिप्पली नामक एक महाधनवान ब्राह्मण युवक ने अपने माता-पिता के मरने पर एक दिन घर से निकल प्रव्रजित होने की ठानी। उसे अपने माणवक (विद्यार्थी) जीवन से ही अपने घर की सामन्तशाही जीवन पद्धति से वैराग्य हो गया था। परंतु माता-पिता का ख्याल कर उनकी जीवित अवस्था में घर पर बना रहा। उसके पास बचपन हजार गाड़ियाँ भर स्त्री धन था।

वे स्त्री-पुरुष, दोनों ही समवयस्क तथा परम सुन्दर एक विचार के थे। परन्तु उन्हें अहर्निश यह बात सताया करती थी कि उतने धन के संग्रह कर रखने और हज़ारों दास-दासियों को इस प्रकार बंद रखने

से क्या लाभ ? इतना पाप किन लिये किया जाता है ? क्योंकि उन्हें "सिर्फ चार हाथ वस्त्र और थाली भर भात चाहिए।" इस प्रकार के पाप से उन्हे "अनेकों जन्म में भी छुटकारा नहीं मिल सकेगा।

एक दिन वे—"हमारे तीनों लोक जलती हुई फूस की झोपड़ी समान मालूम पड़ते हैं, हम प्रव्रजित होंगे" विचार कर हाथ में मिट्टी का भिक्षा पात्र ले, "संसार में जो अर्हत हैं, उन्हीं के उद्देश्य से हमारी यह प्रव्रज्या है" कह प्रव्रजित हो, झोली में पात्र रखकर उसे कंधे से लटका, महल से उतरे। घर में दासों या कर्मकरों में से किसी ने भी न जाना।

इस प्रकार उन मानव प्राणियों को मुक्त कर—अपनी ज़मींदारी की सीमा के बाहर निकल जाने पर मार्ग में चलते हुए माणवक ने सोचा—एक अति सुन्दर स्त्रीरत्न, इस भद्रा कापिलायनी को मेरे साथ देखकर लोग कहेंगे "संन्यासी होकर भी स्त्री से अलग नहीं हो सके।" अतः पिप्पली माणवक उस स्थान पर खड़ा हो गया, जहाँ से वह रास्ता, दो तरफ़ को फटता था। भद्रा ने पूछा—आर्य! "क्यों ठहर गए?" माणवक ने कहा—भद्रे! तुझ स्त्री को मेरे साथ देखकर पाप-पूर्ण कल्पना करके लोग नरकगामी होंगे, इसलिये यह उचित है कि इन दो रास्तों में से एक पर तुम जाओ और एक पर मैं।"

"हाँ आर्य! संन्यासी के साथ स्त्री न होनी चाहिए। यह लोक-चर्या नहीं है। मुझमें भी लोग दोष देखकर मन में पाप भावना करके नरकगामी होंगे, इसलिये हम दोनों को पृथक् होना ही उचित है।" ऐसा कह प्रव्रजित पतिदेव को तीन बार प्रणाम करके, दशों नखों के योग से शुभ्रगौर अंजली जोड़कर भद्रा बोली—"इतने दिनों से चला आया सम्बन्ध आज छूटता है। आर्य!" ऐसा कह दोनों एक दूसरे से पृथक् हो गए।

भगवान राजगृह और नालंदा के बीच एक वटवृक्ष के नीचे अपना

आसन जमा ध्यान मग्न बैठे थे। माणवक ने वहीं आकर भगवान् से उपसम्पदा ग्रहण की और भगवान् ने उसे 'महाकाश्यप' कहकर संबोधित किया। उपसम्पदा ग्रहण कर आठवें दिन महाकश्यप ने अर्हत-पद को प्राप्त किया। कुछ समय पीछे भद्रा कापिलायनी भी भगवच्छरण में आकर भिक्षुणी हुई।

संघ नियम की घोषणा

इस प्रकार देश के सुविख्यात और प्रतिष्ठित विद्वानों और आचार्यों को भगवान् के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करके उनके शिष्य होने के कारण अगणित लोग भगवान् के धर्म में सम्मिलित होने लगे। संसार में सभी प्रकार के पुरुष हैं। इन अभिनव भिक्षुओं में सभी आश्रयहीन न थे। इस कारण भिक्षु-समूह में उद्दंडता और उच्छृङ्ख-लता की शिकायत होने लगी। कुछ भिक्षुगण आपस ही में कलह करने लगे। जब यह सब शिकायत भगवान के पास पहुँची तो भग-वान् ने भिक्षु-संघ को सुव्यवस्थित और सुमर्यादित करने के लिए संघ के नियम बना दिए इन नियमों में भगवान् ने उपाध्याय के बिना भिक्षुओं के रहने का निषेध किया। उपाध्याय और आचार्य के साथ भिक्षुओं को किस प्रकार विनयशील होकर रहना चाहिए, उपाध्याय को किस प्रकार भिक्षुओं के साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करना चाहिए। भगवान् ने इसके समस्त नियम बनाकर अंत में बताया—उपाध्याय और आचार्य को भिक्षुगण पिता के समान और उपाध्याय भिक्षुओं को पुत्र के समान समझें। इसके अतिरिक्त भगवान् ने नये शिष्यों के लिए कितने ही नियम बनाए। उपसम्पदा ग्रहण करने के नियम बनाए, भिक्षाचर्या, गृहस्थों से व्यवहार, भिक्षुओं की दिनचर्या आदि सभी आवश्यक नियम उपनियम बनाकर भिक्षुसंघ को एक सुव्यवस्थित और सुमर्यादित संस्था बना दिया। इस प्रकार भगवान् 'शास्ता' ने कठोर संघ-नियमों का अनुशासन (विधान) बनाकर अपनी शिष्य-

मण्डली को एकत्रित करके अपने धर्म का सार निम्नलिखित मार्मिक शब्दों में बतलाया:—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा,
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं।

अर्थात्—समस्त पाप का त्याग करना, समस्त पुण्य-कर्मों का संचय करना और अपने चित्त को निर्मल एवं पवित्र रखना, यही बुद्ध का अनुशासन है।

अनाथपिण्डिक का दान

उस समय श्रावस्ती (कोशल) का सुदत्त अनाथपिण्डिक गृहपति पाँच सौ गाड़ियों में माल भर कर राजगृह जा अपने प्रिय सम्बन्धी सेठ* के घर ठहरा हुआ था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के लोक में उत्पन्न होने की बात सुनी। दूसरे दिन अत्यन्त प्रातःकाल उठ, वह बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन; स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित बुद्ध को महादान दे, श्रावस्ती आने के लिए शास्ता से वचन लिया।

अनाथपिण्डिक ने अशर्फी (= सुवर्ण) बिछाकर जेतवन मोल ले, विहार बनवाया। जिसके मध्य में दश-बलधारी बुद्ध की कुटी बनवायी। उसके इर्द-गिर्द अस्सी महास्थविरों के पृथक-पृथक निवास, एक दीवार दो दीवार वाली हंस के आकार की लम्बी शालायें, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुष्करिणियाँ, टहलान (= चंक्रमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाए! इस प्रकार करोड़ों के खर्च से उस रमणीय स्थान में सुन्दर विहार बनवा, भगवान् को लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (= शास्ता) यह संदेश

*सेठ या श्रेणी नगर का अवैतनिक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता था।

सुन, महान भिक्षु संघ के साथ राजगृह से निकल क्रमश: श्रावस्ती नगर में पहुँचे ।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैयारी पहले से ही कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन, सब अलंकारों से अलंकृत पाँच सौ कुमारों के साथ, सब अलंकारों से प्रतिमण्डित अपने पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियों सहित वह, पाँच रंग की चमकती हुई पाँच सौ पताकायें लेकर बुद्ध के आगे-आगे चला। उसके पीछे महासुभद्रा और चूल सुभद्रा नाम की दो पुत्रियाँ पाँच सौ कुमारियों के साथ पूर्ण घट लेकर निकलीं। उनके पीछे सब अलंकारों से अलंकृत सेठ की देवी (=भार्या) पाँच सौ स्त्रियों के साथ, भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफेद वस्त्र धारण किए स्वयं सेठ तथा वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किए अन्य पाँच सौ सेठों को साथ ले, भगवान की अगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे-आगे जा रही थी। पीछे-पीछे भगवान् महाभिक्षु-संघ के घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहली शरीर प्रभा से रंजित करते हुए, अनन्त बुद्ध लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तब अनाथपिण्डिक ने उनसे पूछा—भन्ते ! मैं इस विहार के विषय में कैसे क्या करूँ ?"

'गृहपति ! यह विहार आए हुए तथा न आए हुए भिक्षु-संघ को दान कर दे।"

'अच्छा भन्ते।' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल—"मैं यह जेतवन विहार सब दिशा और काल (आगत-अनागत चतुर्दिश) के बुद्ध-प्रमुख-भिक्षु-संघ को देता हूँ" कह कर प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान अनुमोदन करते हुए कहा—

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुओं से, रेंगने वाले (सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूँदा-बाँदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए उपयोगी है। इसलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाए और बहुश्रुतों को निवास कराए प्रसन्न, चित्त साधकों को अन्न-पान, वस्त्र तथा निवास प्रदान करे। ऐसा करने पर वे सब दुःखों के नाश करनेवाले धर्म का उपदेश निश्चिंत और निर्विघ्न हो करने में समर्थ होते हैं। जिसे जानकर वे मलरहित (क्षीणाश्रव) निर्वाण को प्राप्त होंगे।"

इस प्रकार विहार दान का महात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिंडिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा के प्रासाद (विशाखाराम) का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ था! लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार पूजोत्सव नौ महीने में समाप्त हुआ। विहार-पूजोत्सव में भी बहुत व्यय हुआ। इस प्रकार उसने उस विहार ही में करोड़ों का धन भी दान किया।

भिक्षुणी संघ की स्थापना

महाराज शुद्धोदन की मृत्यु के बाद महाप्रजापति गौतमी शाक्य कुल की लगभग पांच सौ स्त्रियों को साथ लेकर प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से कपिलवस्तु से पैदल चलकर, मार्गके कष्ट उठाती हुई वैशाली में आई। किंतु भगवान् के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करने की हिम्मत इस कारण न पड़ी कि कपिलवस्तु में वह प्रव्रज्या देने से इनकार कर चुके थे। इस कारण वे सब मार्ग में ही एक जगह उदास-भाव से बैठी चिंता कर रही थी। इतने में अकस्मात्

बुद्ध-शिष्य आनन्द से भेंट हो गई। आनन्द ने उनकी दुःख कहानी सुन भगवान् के पास जाकर निवेदन किया—"भगवन्! आप प्राणि-मात्र के कल्याण के लिये अवतीर्ण हुए हैं, तो क्या ये शाक्य-स्त्रियाँ उन प्राणियों से बाहर हैं, जिनको आप अपनी दया से सिंचित करते हैं?" इस प्रकार आनन्द के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भगवान् ने कहा—"मैं उन्हें अपनी दया से वंचित नहीं करता हूँ, किन्तु भिक्षु-व्रत अत्यन्त कठिन होने के कारण उन लोगों से पालन हो सकेगा या नहीं, मैं इस विचार में था। परन्तु तुम्हारा अनुरोध और उन लोगों की इतनी लगन और उत्साह देखकर आदेश करता हूँ कि यदि महाप्रजापती गौतमी एवं अन्य शाक्य-महिलाएँ आठ अनुलंघनीय कठोर नियमों का पालन करें तो उन लोगों को दीक्षित करके उनका एक भिक्षुणी-संघ बना दिया जाय।" आनंद ने भगवान् के बनाए आठों नियमों को महाप्रजापती गौतमी को सुनाया। गौतमी ने उन्हें सादर स्वीकार किया। तब भगवान् ने शाक्य-स्त्रियों को बुलाया और उनको प्रव्रज्या तथा उपसंपदा देकर भिक्षुणी संघ का निर्माण किया।

विशाखा के सात्त्विक दान

महाराज प्रसेनजित के कोषाध्यक्ष मृगार के पुत्र पूर्णवर्धन की स्त्री का नाम विशाखा था। यह अंगराज के कोषाध्यक्ष धनंजया की पुत्री थी। इसी विशाखा ने श्रावस्ती में 'पूर्वा (विशाखा) राम, नामक एक विहार बनवाकर भगवान् बुद्ध को सशिष्य रहने के लिये अर्पण किया था। यह भगवान् की परम भक्त थी। एक दिन भगवान् विशाखा के यहाँ आमंत्रित होकर भोजन करने के लिये गए। भगवान् के भोजनोपरान्त की धार्मिक चर्चा द्वारा समुत्तेजित और सम्प्रहर्षित हो विशाखा ने हाथ जोड़कर कहा—भगवान्! क्या मैं आपसे कुछ माँग सकती हूँ?" भगवान् ने कहा— तथागत वरों से परे हो गये हैं

विशाखा ने बड़ी नम्रतापूर्वक कहा—"भगवान् ! मेरी आठ बातें आप स्वीकार करें ये विहित और निर्दोष हैं:—

(१) बरसात के दिनों में वस्त्र-विहीन भिक्षुओं को बड़ा कष्ट मिलता है और उनको वस्त्र-विहीन अवस्था में देखकर लोगों के चित्त में ग्लानि उत्पन्न होती है। इस कारण मैं चाहती हूँ कि संघ को वस्त्र-दान किया करूँ।

(२) श्रावस्ती में बाहर से आनेवाले भिक्षु भिक्षा के लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं, इसलिये मैं उनको भोजन देना चाहती हूँ।

(३) बाहर जाने वाले भिक्षु भिक्षा के लिये पीछे रह जाते हैं और अपने निर्दिष्ट स्थान पर देर में पहुँचते है इसलिये मैं उनके भोजन का भी प्रबंध करना चाहती हूँ।

(४) रोगी भिक्षुओं को उचित पथ्य और औषध नहीं मिलती, मैं चाहती हूँ कि उसका भी प्रबन्ध करूँ।

(५) संघ के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करने वाले भिक्षुओं को भिक्षा के माँगने के लिये समय नहीं मिलता। अतएव मैं चाहती हूँ कि उनके भोजन का भी प्रबंध कर दूँ।

भगवान् ने कहा—"हे विशाखे ! तुम्हें इन बातों से क्या लाभ होगा ?" उसने उत्तर दिया—"भगवान् ! वर्षा-ऋतु के बाद जब भिक्षु लोग भिन्न-भिन्न स्थानों से श्रावस्ती में लौटकर आवेंगे और आप से किसी मृत-भिक्षु के संबंध में बात करेंगे तथा आप उसे असाधु कर्म त्यागकर साधु-जीवन ग्रहण करनेवाला, निर्वाण और अर्हत्-पद के लिये यत्नवान तथा उसके जीवन की सफलता और निष्फलता का वर्णन करेंगे, तब मैं उनसे उस समय पूछूँगी—भन्तेगण ! क्या वह मृत-भिक्षु श्रावस्ती में भी रह गया है ?" जब मुझे मालूम होगा कि वह यहाँ पहले रह गया है तो मैं समझूँगी कि उसने मेरे दिए हुए पदार्थों से अवश्य लाभ उठाया होगा। उस बात को

याद कर मेरे चित्त में प्रमोद होगा, प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होगी, प्रीति युक्त होने पर काया शान्त होगी। काया शान्त होने पर सुख अनुभव करूँगी और सुखिनी होने पर मेरा चित्त समाधि को प्राप्त होगा। और वह होगी मेरी इन्द्रय-भवन, बल-भावना बोध्यंग-भावना भगवान्! इन्हीं गुणों को देख मैंने तथागत से ये वर मांगे हैं।

तब भगवान् ने मृगार माता विशाखा की इन बातों को गाथाओं से अनुमोदित किया—

"जो शीलवती, सुगत की शिष्या, प्रमुदित हो अन्न दान देती हैं कृपणता को छोड़ शोक-हारक, सुखदायक, स्वर्ग-प्रद दान को देती हैं। वह निर्मल निर्दोष, मार्ग को या दिव्य बल और आयु को प्राप्त होगी। पुण्य की इच्छा वाली वह सुखिनी और निरोग हो चिरकाल तक प्रमोद करेगी।"

भगवान् के मुख से पवित्र सात्विक दान का वर्णन सुनकर विशाखा बड़ी संतुष्ट हुई और बोली—"भगवान्! मेरी एक प्रार्थना और है उसे आप कृपा करके सुनें। भिक्षुणियाँ नग्न होकर सर्व-साधारण स्त्रियों के घाट पर नहाया करती हैं। इसलिये कुलटा स्त्रियाँ वहाँ उनकी हँसी उड़ाती और कहती हैं—'हे भिक्षुणियों! युवावस्था में काम का दमन करने से क्या लाभ? तुम लोग वृद्धावस्था में वैराग्य-साधन करो। ऐसा करने से तुम्हे लोक और परलोक दोनों का सुख मिलेगा। अतएव भगवन्! मेरी विनय है कि भिक्षुणी लोग नग्न होकर घाटों पर न नहाया करें" आदि आठ वर उसने मांगे। भगवान् ने यह बात स्वीकार करके नियम बना दिया।

जीवन के अंतिम तीन मास

एक दिन सवेरे भगवान् चीवर-वेष्ठित हो भिक्षा-पात्र हाथ में ले भिक्षा करने के लिए वैशाली नगर में गए। भिक्षा ग्रहण करके वहाँ

से लौटने पर भोजनादि से निवृत्त हो आनंद से बोले—"हे आनंद! हमारा आसन लेकर 'चापाल चैत्य' में चलो, आज हम वहीं दिवा-विहार करेंगे।" आज्ञानुसार आसन ले आनंद भगवान् के पीछे-पीछे चापाल चैत्य में गए और वहाँ जाकर आसन बिछा दिया। भगवान् उस पर विराजमान हुए। आनंद भी भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गए। उस समय भगवान् आनंद को सम्बोधन कर बोले—"हे आनंद! यह वैशाली अति रमणीय स्थान है। यहाँ पर उदेय-चैत्य, गौतम-मंदिर, सप्त-मंदिर, सारंदद मंदिर, चापाल चैत्य-मंदिर इत्यादि पवित्र स्थान अत्यन्त मनोहर और रमणीय है। तथागत भी चाहे तो आयु दीर्घ कर ले सकते हैं।"

भगवान का आय-संस्कार-त्याग

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने चापाल चैत्य-मंदिर में स्मृतिवान् और संप्रज्ञान-अवस्था में शेष आयु-संस्कार का त्याग किया।

यह घटना माघ शुक्ल पूर्णिमा की है। उसके ठीक तीन महीने बाद, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को, भगवान् परिनिर्वाण में चले गए हैं।

"हे आनन्द! विमुक्ति अर्थात् बाहरी वस्तुओं को इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण और चिंता करने से ध्यान में जो व्याघात उत्पन्न होता है, उस व्याघात से विमुक्ति का होना आवश्यक है। उस विमुक्ति के आठ सोपान हैं—(१) मन में रूप (वस्तुओं) का भाव विद्यमान है और बाहरी जगत् में भी रूप (वस्तुएं) दिखायी पड़ते हैं, यह विमुक्ति का प्रथम सोपान है, (२) मन में रूप का भाव विद्यमान नहीं है, परंतु बाहरी जगत् में रूप दिखाई पड़ता है, यह विमुक्ति का दूसरा सोपान है; (३) मन में रूप का भाव विद्यमान है, परंतु बाहरी जगत् में रूप दिखाई नहीं पड़ता, यह विमुक्ति का तीसरा सोपान है; (४) रूप जगत् को अतिक्रमण करके 'आकाश अनंत' इस प्रकार भावना करते

'आकाशानंत्यायतन' में विहार करना, यह विमुक्ति का चौथा सोपान है; (५) आकाशानंत्यायतन को अतिक्रमण करके 'विज्ञान अनंत' इस प्रकार भावना करते-करते 'विज्ञानानंत्यायतन' में विहार करना, यह विमुक्ति का पाँचवाँ सोपान है; (६) विज्ञानानंत्यायतन को अतिक्रमण करके 'अकिंचन' अर्थात् 'कुछ नहीं' इस प्रकार का भावना करते-करते अकिंचन्यायतन में विहार करना, यह विमुक्ति का छठा सोपान है; (७) अकिंचन्यायतन को अतिक्रमण करके 'ज्ञान भी नहीं है, अज्ञान भी नहीं है' इस प्रकार भावना करते-करते, 'नैव संज्ञा ना-संज्ञायतन में विहार करना, यह विमुक्ति का सातवां सोपान है; (८) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण करके ज्ञान और ज्ञाता दोनों के निरोध द्वारा 'संज्ञवेदयितृनिरोध' उपलब्ध करना, यह विमुक्ति का छठवाँ और अंतिम सोपान है।"

आनन्द को महापरिनिर्वाण की सूचना

इन सब बातों के वर्णन कर चुकने के बाद भगवान् ने कहा—"हे आनन्द ! संबोधि लाभ करने के कुछ काल बाद एक बार हम उरुविल्व ग्राम में निरंजना नदी के तट पर अजपाल नामक न्यग्रोध (वट) के नीचे बैठे थे। प्रचार का विचार हुआ त निश्चय किया कि जब तक हमारे भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका लोग सच्चे श्रावक-श्राविका न हो जायँगे; जब तक वे स्वयं ज्ञानी, विनीत बहु-शास्त्रज्ञ, यथार्थ धर्म-वेत्ता विशेष और साधारण धर्मानुष्ठानकारी, विशुद्ध जीवन प्राप्त करके दूसरों को भी समझदार उपदेश प्रदान न कर सकेंगे; जब तक सत्य का यथार्थ रूप से वर्णन और उसका विस्तार नहीं कर सकेंगे और जब तक वे मिथ्या प्रमाद-धर्म के उपस्थित होने पर उसको सत्य के द्वारा प्रदर्शित करने में समर्थ नहीं होंगे तब तक हम अस्तित्व से नहीं जायँगे।' अतएव "हे आनंद !

आज इस चापाल-मंदिर में तथागत ने स्मृतिवान् और संप्रज्ञात अवस्था में ही अपने आयु-संस्कार का परित्याग किया है।"

हे भिक्षुओ ! तुम लोग इस धर्म को सम्यक् रूप से धारण करो इसकी चिंता करो और आलोचना करो तथा सबके हित एवं सुख के लिए उन पर अनुकम्पा करके इसका विस्तार करो। हे भिक्षुओ सावधान हो चित्त लगाकर हमारी बात सुनो। संसार की सब उत्पन्न यावत् वस्तुयें वयो-धर्म (काल-धर्म) के अधीन हैं ! अतएव तुम लोग सचेत होकर निर्वाण का साधन करो। अब बहुत शीघ्र तथागत निर्वाण को प्राप्त होंगे। आज से तीन मास के बाद तथागत निर्वाण में जायेंगे।

इसके बाद भगवान् ने निम्नलिखित गाथा का उद्गान किया—

परिपक्को वयो मह्यं परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणं मत्तनो॥
अप्पमत्ता सतिमन्तो सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहित संकप्पा सचित्तं अनुरक्खथ॥
यो इमस्मिं धम्मविनये अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं दुक्ख सस्सतं करिस्सति॥

अर्थ—अब हमारी आयु परिपक्व हो चुकी है। अब हमारे जीवन के थोड़े ही दिन शेष रह गए हैं। अब मैं सब छोड़ कर चला जाऊँगा। मैंने स्वयं अपने को अपना आश्रय बनाया है अर्थात् मैं स्वयं अपने वास्तविक रूप में स्थित हो गया हूँ। हे भिक्षुओं ! अब तुम लोग प्रमाद-रहित, समाहित, सुशील और स्थिर संकल्प होकर अपने चित्त का पर्यवेक्षण करो। जो भिक्षु प्रमाद-रहित होकर हमारे इस धर्मविनय में विहार करेंगे, वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का समूल उच्छेद करके दुःखों का अत्यन्त निरोध कर सकेंगे।

तीर्थ-स्मारक परिच्छेद

भगवान् बुद्ध से संबंध रखने वाले बौद्ध-तीर्थ तथा बौद्ध-धर्म एवं संस्कृति से संबन्ध रखने वाले स्थानों को बौद्ध-स्मारक माना जाता है। इन्हीं का संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया गया है। इनमें मुख्य पवित्र तीर्थ स्थान चार हैं:—

१. लुंबिनी—बुद्ध का जन्म स्थान है।

२. उरुविल्व या बुद्धगया—बुद्ध ने बुद्धत्व लाभ किया था।

३. वाराणसी—बुद्ध ने पहले पहल अपना धर्म प्रचारकिया था।

४. कुशीनगर—बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था।

(१) बुद्धगया—गया स्टेशन से ७ मील की दूरी पर अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम उरुविल था। गया जंकशन इसका स्टेशन है, जो पूर्वी रेलवे के ग्रांड ट्रंक लाइन पर है। गया जंकशन स्टेशन पर ठहरने के लिये धर्मशाला भी है। यहाँ से बुद्धगया जाने के लिये पक्की सड़क है और सवारी भी मिलती है। लगभग पच्चीस सौ साल पहले यहाँ पर भगवान् बुद्ध ने पीपल के पेड़ के नीचे बुद्धत्व लाभ किया था। यहाँ एक बहुत सुन्दर विशाल मंदिर है, जिसके भीतर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा विराजमान हैं। यहाँ की प्राचीन वस्तुएँ देखने योग्य हैं।

(२) राजगृह—इसे आजकल राजगिर कहते हैं। यह पटना ज़िला में बख्तियारपुर स्टेशन से दक्षिण की ओर तैंतीस मील दूरी पर अवस्थित है। बिहार-बख्तियारपुर लाइट रेलवे का आखिरी स्टेशन राजगिर है। राजगृह से आठ मील पर बड़ागाँव जरासंघ की राजधानी है। यहाँ प्राचीन बौद्ध-मन्दिर है। राजगृह में भगवान् बुद्ध ने बहुत

समय तक अवस्थान करके गृद्धकूट पर्वत पर उपदेश किये थे।

(३) वैशाली—गणतंत्र की यह राजधानी थी। यहीं की अम्बपाली गणिका को भगवान् ने धर्म में दीक्षित किया था। यहीं पर भगवान् ने स्त्रियों को प्रव्रज्या की अनुमति दी थी। वैशाली को आज कल बसाढ़ कहते हैं। दूर तक इसके खँडहर फैले हुए हैं। पटना से मुज़फ़्फ़रपुर तक एन्० ई० आर० से जाकर बसाढ़ के लिये बसें मिलती हैं। वैशाली में बुद्ध से प्रशंसित एक गणतंत्री शासन व्यवस्था थी।

(४) नालंदा जिला पटना, स्टेशन नालंदा। एन० आर० के बख्तियारपुर स्टेशन से बिहार-बख्तियारपुर लाइट रेलवे एवं बस जाती हैं। यहाँ प्राचीन समय में बौद्धों का प्रसिद्ध बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था, जिसके खंडहर अब तक भी मौजूद हैं। खोदने पर बहुत-सी पुरानी वस्तुएं मिली हैं। यहाँ पर संग्रहलय भी है, जिसमें इस स्थान से प्राप्त वस्तुएँ संग्रहीत हैं। आधुनिक पालि इंस्टिच्यूट भी है।

(५) सारनाथ—ज़िला बनारस, स्टेशन सारनाथ एन० इ० आर० लाइन। यह स्थान बनारस कन्टोनमेंट से ६ मील दूरी पर है। यह वह स्थान है जहाँ पहले पहल भगवान बुद्ध ने अपना धर्म चक्र-प्रवर्त्तन किया था। यहाँ अब भी स्तूप तथा पुराने खँडहर मौजूद हैं। यहाँ सरकार की तरफ से एक पुरातत्त्व संग्रहालय, सूचना केन्द्र तथा (तात्कालिक) विश्राम गृह कायम कर दिया गया है। यहाँ महाबोधि सभा की ओर से संचालित अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त मूलगंधकुटी विहार, महाबोधि कालेज, प्राइमरी स्कूल, दातव्य चिकित्सालय, मूलगंधकुटी विहार पुस्तकालय आदि हैं। बर्मी बौद्धों द्वारा निर्मित-संचालित बर्मी विहार एवं धर्मशाला है। चीनी बौद्धों का अपना सुन्दर विहार है। तिब्बती बौद्धों का भी एक स्वतंत्र विहार होने जा रहा है।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त मूलगंध कुटी विहार के ठीक पीछे मृगदाय का परिचायक मृगोद्यान है और उसके पार्श्व में २०वीं शताब्दी

में भारत एवं सिंहल के महान् बौद्ध प्रचारक अनागारिक धर्मपालजी की समाधी है। प्राचीन वस्तुओं में अनेक स्तूप, मूलगंध कुटी के ध्रुवं शेष आदि अनेक बिखरे पड़े हैं। ये सब सारनाथ के आधुनिक स्टेशन से केवल पचास गज की दूरी पर है।

(६) कुशीनगर—ज़िला देवरिया, स्टेशन देवरिया, एन० ई० रेलवे। यह स्थान गोरखपुर स्टेशन से तैंतीस मील और देवरिया से तेईस मील तथा पड़रौना से १४ मील दूर है। यह भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण अर्थात् मृत्यु का स्थान है। यहाँ बौद्ध-स्तूप खडहर और श्मशान (जहाँ भगवान बुद्ध का दाह कर्म हुआ था) मौजूद हैं। यहाँ भगवान् बुद्ध की दो बहुत प्राचीन और विशाल मूर्तियाँ हैं। एक बैठी हुई है और दूसरी १५ फ़ीट लेटी हुई है। परिनिर्वाण स्तूप की ऊंचाई ७५ फुट और परिधि १६५ फुट है। कुशीनगर का अवशेष दो भागों में बट जाता है। शालवन एव परिनिर्वाण स्थल २० वी शताब्दी में इसका पुनरुद्धार हुआ। इसका श्रेय महास्थविर महावीर को है। १८९० से १९२० तक महास्थविर महावीर ने कुशीनगरके पुनरुत्थान के कार्यों में जीवन दान दी। व्यय भार अधिकांश में ब्राह्म देश वासियों ने वहन की।

यहाँ पाठशाला, धर्मशाला आदि हैं। बुद्ध कालेज के नाम से एक डिग्री कालेज भी है तथा बिड़ला बन्धुओं की धर्मशाला भी है। चीन के बौद्धों का चीनी विहार भी है।

भगवान् की २५०० वीं जयन्ती के उपलक्ष में कुशीनगर को अपनी प्राचीन श्री-शोभा देने के लिये केन्द्रीय तथा प्रदेशीय शासन ने कुशीनगर में सुन्दर अतिथिशाला, नल-कूप, विद्युत आदि का प्रबन्ध कर शालवन शोभा स्थापित किया है।

(७) लुंबिनी कानन—ज़िला गोरखपुर, स्टेशन नौतनवा, एन० ई० रेलवे। स्टेशन से आठ मील दूरी पर यह स्थान है। जाने के लिए सड़क और रहने के लिए धर्मशाला तथा रेस्ट हाउस हैं।

यह वह स्थान है जहाँ पर बुद्ध का जन्म हुआ था। आज भी अशोक स्तम्भ के निकट एक छोटा-सा मन्दिर है। इसमें एक प्राचीन पाषाण प्रतिमा है। दृश्य है, बुद्ध का जन्म। वहाँ महामाया (बुद्ध की माता) वृक्ष के नीचे खड़ी है। दूसरे सिद्धार्थकुमार (भगवान् बुद्ध के लड़कपन का नाम) को गोद लिए कोई स्त्री (गौतमी) खड़ी हैं। इस पत्थर की मूर्ति को गाँव के लोग लुंबिनी देवी के नाम से पूजते हैं और जानकार लोग सिद्धार्थकुमार को गोद में लिए हुए बुद्ध माता महामाया की पूजा करते हैं।

आज लुम्बिनी में दर्शनीय वस्तुओं में प्रमुख है अशोक स्तम्भ। ईस्वी सन की ७ वीं शती में यह कहते हैं, बिजली के गिर पड़ने से खंडित हो गया था परन्तु जो भाग इस समय बचा है उसकी परिधि ही ७½ फुट और ऊँचाई १३½ फुट है। इसका लगभग १० फुट जमीन के अन्दर गड़ा भी है। इसके शीर्ष पर के अश्व की आकृति उपलब्ध नहीं है। इस स्तम्भ पर अशोक का एक लेख है। अपने राज्यारोहण के २० वें वर्ष, इस स्थान पर दर्शनार्थ आने के स्मृति-चिह्न स्वरूप सम्राट अशोक ने निर्मित कराया।

(८) कपिलवस्तु—ज़िला बस्ती, स्टेशन शोहरतगंज, एन० ई० रेलवे। यहाँ बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन की राजधानी थी। यदि भगवान् बुद्ध गृहस्थी में रहते तो अपने पिता की इस राजधानी के उत्तराधिकारी होते। अब भी यहाँ खँडहर और महाराजा अशोक का स्तंभ मौजूद है।

(९) कौशांबी—ज़िला इलाहाबाद, स्टेशन भरवारी एन० आर० से उतर कर कोसम गाँव को जाना चाहिए। यह भगवान् बुद्ध के विहार करने और धर्म-प्रचार करने का स्थान था। यहाँ अब भी पुराना खँडहर और महाराज अशोक का स्तंभ वर्तमान है।

(१०) सांकास्य—ज़िला फ़रुखाबाद, स्टेशन पखना एन०

आर०। फ़र्रुखाबाद जंकशन से पखना स्टेशन जाना पड़ता है। यहाँ से सांकाश्य ३ मील की दूरी पर है। शिकोहाबाद से भी मैनपुरी होकर पखना जाया जा सकता है। यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान् बुद्ध स्वर्ग में अपनी माता महामाया और देवताओं को धर्म-उपदेश करके तीन मास के बाद अवतीर्ण हुए थे। यहाँ खोदने पर बहुत से प्राचीन चिन्ह मिले हैं, परन्तु अभी पर्याप्त खोदाई नहीं हुई है।

सांकस्य गाँव एक ऊँचे टीले पर आज बसा हुआ है। इन टीलों की श्रंखला गाँव के बाहर बहुत दूर तक फैली हुई है। प्रधान टीले की लम्बाई १,५०० फुट और चौड़ाई १००० फुट है। आज तक लोग इसे किला कहते आये हैं।

सांकस्य ग्राम के दो फर्लांग दूरी पर चौखण्डी स्तूप आदि और टालें हैं। सांकस्य की खोदाई में बौद्ध काल की अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं जसे मूर्तियाँ, मुहरें, सिक्के आदि।

यहाँ यात्रियों की सुख-सुविधा की अब तक कोई व्यवस्था न थी। परन्तु २५०० वीं महापरिनिर्वाण उत्सव के उपलक्ष में शासन ने अतिथिशाला, जल, विद्युत एवं मार्ग आदि निर्माण करा दियाहै। पखना स्टेशन को आधुनिक आवश्यकताओं से पूर्ण कर दी है।

(११) साँची—ज़िला भूपाल, स्टेशन साँची सेन्ट्रल रेलवे। यहाँ पर भगवान् के प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्-गल्यायन रहते थे। भगवान बुद्ध भी यहाँ धर्म प्रचारार्थ आया करते थे। यहाँ अब भी बौद्ध विहारों और चैत्यों के भग्नावशेष पहाड़ों पर मौजूद हैं। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन का यह समाधि-स्थान है। इसी जगह से उनके अस्थि-अवशेष मिले थे। भूपाल रियासत की ओर से यहाँ एक संग्रहालय भी स्थापित हुआ है और सरकारी डाक बँगला तथा महाबोधि सभा का अतिथिगृह भी यहाँ मौजूद है।

परन्तु १६५२ तक यह बिलकुल उपेक्षित-सा रहा। श्रीलंका के बौद्धों के अथक परिश्रम से विश्वविख्यात सांची स्तूप के बिलकुल

समीप में एक अभिनव चेतीय गिरि विहार का निर्माण कराकर महाबोधि सभा ने १९५२ ई० में भारत के प्रधान मंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरू के हाथों इसका उद्घाटन कराया था। पश्चात् केन्द्रीय एवं भोपाल शासन ने उस स्थान को पुनर्जीवन प्रदान की। इसने आधुनिक आवश्यकताओं से परिपूर्ण, एक नगर का रूप ले लिया है। स्टेशन पर भी अनेक सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं। यह नगर स्टेशन से स्तूप एवं विहार के बीच की परिधि में बस गया है।

(१२) भेलसा गुहा—ज़िला भूपाल, स्टेशन भेलसा, सदर्न रेलवे। पुरानी बौद्ध गुफाओं के चिन्ह अब भी विद्यमान हैं।

(१३) ललितपुर गुहा - ज़िला भूपाल, स्टेशन ललितपुर सदर्न रेलवे। यहाँ भी प्राचीन बौद्ध गुफाओं के चिन्ह अब तक मौजूद हैं।

(१४) एलौरा—यह दौलताबाद स्टेशन से सात मील दूर है। मनमाड स्टेशन में मेल हुआ है। यह निज़ाम हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत है। दौलताबाद से एलौरा जाने के लिए सवारियाँ मिलती हैं। यहाँ की खोह विख्यात है। बौद्ध, जैन और हिन्दू गुफाओं के अलग अलग सिलसिले हैं। गुफाओं के आगे बड़े-बड़े झरने हैं। बौद्ध गुफाओं में सबसे प्रसिद्ध ये हैं:—

१. धारवार गुफा (सबसे अधिक पुरानी है)
२. विश्वकर्मा की चैत्य गुफा (८५ फीट लम्बी है)
३. दो मंज़िली गुफा।
४, तीन तल वाली गुफा।

विश्वकर्मा की सभा में बुद्ध की एक बहुत बड़ी मूर्ति है जिसको वहाँ के लोग 'विश्वकर्मा' कहते हैं।

(१५) अजन्ता—यहाँ जाने के लिए रास्ता सदर्न रेलवे के पंचौरा जमनेर शाखा लाइन के पाहुर स्टेशन से है। पाहुर से अजन्ता सात मील दूर है। पाहुर में एक धर्मशाला है। प्राचीन समय में बौद्ध-संस्कृति का यह एक मुख्य स्थान था। यहाँ भारतीय

शिला-तक्षण और चित्रकला का अपूर्व निदर्शन हुआ है। यहाँ बहुत से विहार और चैत्य हैं। यहाँ की चित्र-कला की शोभा देखकर चित्त प्रफुल्लित होता है। इस कला की प्रशंसा केवल भारत के ही नहीं पाश्चात्य देश-देशान्तरों से आने वाले यात्रियों और चित्र-विद्या के पारदर्शियों ने भी की है। लगभग २६० फीट ऊँची चट्टान की एक दीवार में आधे गोलाकार की शक्ल में है एक झरना बह रहा है। यहाँ पहाड़ के भीतर से पत्थर को कोर कर अति सुन्दर गुफा मंदिर बनाया गया है। यह मंदिर बौद्धों का है।

(१६) श्रावस्ती जेतवन विहार—वर्तमान "सहेटमहेट" यह स्थान जिला गोंडा में है। और बलरामपुर से दस मील दूर है बहराइच से इसकी दूरी २९ मील है। यह प्राचीन कोशल राज्य की राजधानी थी। पूर्वोत्तर रेलवे के गोंडा स्टेशन से बलरामपूर को एक ब्रांच लाइन जाती है। बलरामपुर से फिर पैदल या किसी दूसरी सवारी से जाना पड़ता है। बलरामपुर शहर में बौद्ध मन्दिर और धर्मशाला है तथा श्रावस्ती में भी बौद्ध मन्दिर और धर्मशाला बन गई है। जेतवन बौद्धों के अत्यंत पवित्र स्थानों में से है। बुद्ध के सबसे अधिक उपदेश जेतवन में ही हुए हैं। सर्व प्रथम १८६३ ई० जनरल कनिंघम ने सहेट-महेट के टीलों की खुदाई करा, प्राचीन श्रावस्ती को प्रकट किया।

(१७) तक्षशिला—पाकिस्तान जिला रावलपिंडी, स्टेशन तक्षशिला जंकशन, । पहले यहाँ एक बौद्ध विश्वविद्यालय था। इस समय भी यहाँ उसके खंडहर, पुराने स्तूप और अशोक का स्तंभ मौजूद है तथा सरकारी म्यूजियम भी यहाँ है।

(१८) पेशावर—पाकिस्तान स्टेशन पेशावर कैंट, यहां पर एक सरकारी म्यूजियम है, जिसमें प्राचीन बुद्ध प्रतिमाओं का बहुत बड़ा संग्रह है। इन भव्य और विशाल प्रतिमाओं को देख कर बौद्ध युग के गौरव का स्मरण आ जाता है।

चुल्लवग्ग की अट्ठकथा में, लिखा है कि अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी राजगृह के श्रेष्ठी का बहनोई था। एक बार अनाथपिण्डिक राजगृह गया। उस समय राजगृह के श्रेष्ठी ने संघ सहित बुद्ध को निमंत्रित किया था। अनाथपिण्डिक को बुद्ध के दर्शन की इच्छा हुई। वह अधिक रात रहते ही घर से निकल पड़ा और सिंहद्वार से होकर सीतवन-जहां भगवान बुद्ध थे, वहां पहुँचा। बुद्ध-उपासक बनने के बाद उसने श्रावस्ती में भिक्षु-संघ सहित बुद्ध को वर्षावास करने के लिये निमंत्रित किया। अनाथपिकिण्डक ने श्रावस्ती जाकर चारों ओर नजर दौड़ाई और विचार किया कि भगवान् उस स्थान में विहार करेंगे, जो ग्राम से न बहुत दूर और न बहुत समीप हो। आने-जाने की आसानी हो। आदमियों के पहुँचने योग्य हो, दिन में बहुत जमघट न हो और रात में एकांत और ध्यान के अनुकूल हो। अनाथपिण्ड ने राजकुमार जेत के उद्यान को देखा जो इन लक्षणों से युक्त था। उसने राजकुमार जेत से कहा—आर्यपुत्र! मुझे अपना उद्यान बौद्ध-विहार बनवाने के लिये दे दो। राजकुमार ने कहा कि वह कहापणों, (सुवर्ण मुद्रा) की कोटी (कोर) लगा कर बिछाने से भी अदेय है। अनाथपिण्डक ने कहा—आर्यपुत्र! मैंने आराम ले लिया। बिका या नहीं बिका इसके निर्णय के लिये जेतकुमार ने कानून के मंत्रियों से पूछा। मन्त्रियों ने कहा— आर्यपुत्र! आराम बिक गया। क्योंकि आपने मोल किया। तब अनाथपिण्डक ने जेतवन में कोर से कोर मिला कर मोहरें बिछा दी। एक बार की लायीं हुई सुवर्णमुद्रा थोड़ी-सी जगह के लिये कम पड़ गयी। श्रेष्ठी और सुवर्णमुद्रा लाने के लिये अपने सेवकों को आज्ञा दी। राजकुमार जेत ने कहा बस गृहपति। इस जगह पर मोहर मत बिछाओ। यह जगह मुझे दो, यह मेरा दान होगा।

अनाथपिण्डक श्रेष्ठी ने बुद्ध सहित भिक्षु संघ के लिये सब प्रकार के सुपास्यों का ध्यान रखते हुए एक बहुत मनोरम और सुविशाल विहार बनवाया। इधर विहार निर्माण कार्य समाप्त हुआ और उधर

भगवान् भी चारिका करते हुए जेतवन पहुँचे। अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी ने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ का विधिवत सेवा-सत्कार करने के बाद चतुर्दिस से आगत-अनागत भिक्षु-संघ के उद्देश्य से जेतवन-विहार को दान किया।

यह जेतवन विहार पुरातत्व विषयक खोजों से निश्चित हुआ है कि महेट से दक्षिण सहेट से जेतवन-विहार है।

भगवान् की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर केन्द्रीय तथा उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा यात्रियों के सुख-सुविधा के लिये अनेक कार्य हुए हैं।

तत्वज्ञान-परिच्छेद

बौद्ध-धर्म भारतवर्ष का विशुद्ध सनातन धर्म है, ऐसा बौद्धों का विश्वास है। बुद्ध-परम्परा के अनुसार यद्यपि बुद्धों का आविर्भाव सदैव भारतवर्ष (जंबूद्वीप) में ही होता है तथापि वह समस्त संसार के व्यथित जीवों का पक्षपात-रहित, समान रूप से दुःख मोचन करते हैं, क्योंकि उनका धर्म सार्वभौमिक है। इसी कारण बुद्ध, उनका धर्म तथा उस धर्म के अनुसार आदर्श जीवन बनाने और प्रचार करने वाले बुद्ध-शिष्यों का संघ—ये त्रिरत्न कहलाते हैं। जो इस त्रिरत्न की शरण में आते हैं, वे ही बौद्ध कहलाते हैं।

'बुद्ध' होना मनुष्य की सर्वोपरि और पूर्ण अवस्था है। प्रत्येक मनुष्य 'बुद्ध' होने का प्रयत्न कर सकता है; किन्तु 'बुद्ध' होने के लिए अनन्त पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। भगवान् गौतम बुद्ध ने बुद्ध होने के लिए साढ़े पांच सौ जन्म पूर्व से तैयारी की थी। पृथिवी पर अब तक कितने बुद्ध हुए हैं और कितने आगे होंगे इसकी गणना नहीं हो सकती। बौद्ध-शास्त्रों में २८ (अट्ठाइस) बुद्धों का वर्णन मिलता है। ये सब बुद्ध लोग अनन्त ज्ञान, अगाध करुणा और अमित विशुद्ध गुणों के आगार होते हैं।

गौतम बुद्ध साढ़े पांच सौ जन्मों तक बोधिसत्व के रूप में रह कर दान, शील, नैष्कम्य, प्रज्ञा, वीर्य क्षांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा इन दसों पारमिताओं को उपलब्ध कर लिया था। इसके बाद वह तुषित नामक देव लोक में चले गये और गौतम बुद्ध के रूप में आविर्भाव होने तक वहीं बोधिसत्त्व-रूप में विद्यमान रहे।

आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले उत्तर भारत (बस्ती ज़िले) में कपिलवस्तु नाम की एक राजधानी थी; जहाँ शाक्य वंशीय महाराज

शुद्धोदन राज्य प्रमुख थे। शाक्य वंश इक्ष्वाकु वंश की शाखा है जिसे सूर्य-वंश भी कहते हैं। महाराज शुद्धोद की दो रानियाँ थीं। एक का नाम महामाया, दूसरी का प्रजापती। महामाया के गर्भ से ईस्वी सन् से ६२३ वर्ष पहिले वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को कपिलवस्तु व देवदह के बीच लुंबिनी कानन में बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म होने पर उनका नाम 'सिद्धार्थ' रक्खा गया।

बौद्ध-शास्त्रों के अनुसार जिस प्रकार रोगी को रोग-निवृत्ति के लिए एक सच्चे वैद्य की आवश्यकता होती है, वैसे ही पृथ्वी के प्राणियों को अपने दुःख निवारण के लिए सम्यक् सम्बुद्ध की आवश्यकता होती है। मनुष्य-समाज जब राग, द्वेष और मोह के कारण नाना प्रकार के मिथ्या विश्वासों में फँस कर दुःखित और पीड़ित तथा इतना असमर्थ हो जाता है कि बुद्धि के रहते हुए भी उचित-अनुचित को सोच नहीं सकता, आंख रहते हुए भी अपने हित को नहीं देख सकता; हाथ-पैर रहते हुए भी अपने दुःख को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं कर सकता और परंपरागत अंधविश्वासों और रूढ़ियों की धार में बहता रहता है; समाज के कुछ थोड़े-से चतुर अग्रगन्य लोग ईश्वर, धर्म, समाज और राष्ट्रीयता के नाम पर बहुजन के हितों और सुखों का अपहरण करके अनुचित भोग भोगने लगते हैं तथा मनुष्यता की जगह कपट, स्वार्थ और संकीर्णता का साम्राज्य हो जाता है तब परम कारुणिक सम्यक् सम्बुद्ध बुद्ध परम्परा के अनुसार उत्पन्न होकर करुणा, मैत्री, समता, संयममय सम्यक् धर्म का प्रचार कर मनुष्य-समाज का दुःख मोचन करते हैं। बौद्धों के विश्वास के अनुसार सम्यक् सम्बुद्ध का गुण अनघ और अपार है। उनकी करुणा और ज्ञान अनन्त है। भगवान् गौतम बुद्ध भी बुद्ध-परम्परा के अनुसार वर्तमान समय के सम्यक् सम्बुद्ध हैं। इसी से इनको तथागत कहते है। उन्होंने मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए चौरासी हज़ार धर्म-स्कंधों का उपदेश किया है जिनमें लोक और लोकोत्तर धर्मों का वर्णन है। ग्यारह काम भुवन (जिनमें ४ काम

दुर्गति भुवन और ७ काम सुगति भुवन है) सोलह रूप ब्रह्म भुवन और चार अरूप ब्रह्म भुवन है। इन ३१ भुवनों (काम लोक, रूप ब्रह्मलोक और अरूप ब्रह्मलोक को त्रिलोक धातु कहते हैं और निर्वाण को लोकोत्तर या निर्वाण धातु कहते हैं। इसको प्राप्त करने के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का सम्यक् अनुशीलन करना चाहिए। शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा सर्व मलों का निरसन तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। बुद्ध-शासन की यही तीन शिक्षाएँ हैं। शील से शासन की आदि कल्याणता प्रकाशित होती है। समाधि शासन के मध्य में है और प्रज्ञा अन्त में। शील से दुःख का तदंग प्रहाण होता है। समाधि से विक्खंबन (विष्कम्भन) प्रहाण होता है और प्रज्ञा से समुच्छेद प्रहाण होता है। शील से मनुष्य काम दुर्गति लोकों का अतिक्रमण करके काम सुगति लोकों को प्राप्त होता है। समाधि से सम्पूर्ण काम लोकों को अतिक्रमण करके रूप और अरूप ब्रह्म लोको को प्राप्त होता है और प्रज्ञा से काम लोक, रूप लोक और अरूप लोक इन सम्पूर्ण लोक धातुओं को अतिक्रमण करके निर्वाण को प्राप्त होता है। निर्वाण बुद्ध धर्म का अन्तिम ध्येय है।

(१) शील—शील का अर्थ है—सदाचार या संयम। सदाचार या संयम-रहित मनुष्य चरित्र हीन कहलाता है। मनुष्य-जीवन का उच्चादर्श है संयमशीलता या सच्चरित्रता। इसलिए बौद्ध-धर्म में किसी जाति, कुल या वर्ण में जन्म लेने से ही बड़ाई या छोटाई नहीं होती; बल्कि न्यूनाधिक शील पालन अर्थात् सदाचार के नियमों के पालन करने के तारतम्य से ही होती है। जैसे उपासकों के पंचशील, सामणेरों के दस शील और भिक्षुओं के २२७ शील इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आठ उपोसथ शील, त्रिरत्न पूजा, वंदना, सेवा, सत्कार और दान ये सब शील (सदाचार के नियमों) के ही अंतर्गत हैं।

(२) समाधि—समाधि का अर्थ है—समाधान अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता एक आलम्बन में समान तथा सम्यक् रूप से चित्त

और चैतसिक धर्मों की प्रतिष्ठा। इसलिए 'समाधि' उस धर्म को कहते हैं; जिसके प्रभाव से चित्त तथा चेतसिक की एक आलम्बन में बिना किसी विक्षेप के सम्यक् स्थिति हो समाधि से विक्षेप का विध्वंस होता है और चित्त-चेतसिक विप्रकीर्ण न होकर एक आलम्बन में पिण्ड रूप से अवस्थित होते हैं। समाधि बहु विध हैं; परन्तु मुख्य भेद दो हैं लौकिक समाधि और लोकोत्तर समाधि—कामलोक, रूप ब्रह्मलोक और अरूप ब्रह्मलोक इन तीन भूमियों की कुशल चित्त एकाग्रता को लौकिक समाधि कहते हैं। जो एकाग्रता आर्य-मार्ग अर्थात् श्रोत आपत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत मार्ग से संप्रयुक्त होती है, उसे लोकोत्तर समाधि कहते हैं। क्योंकि वह इन लोकों को उत्तीर्ण करके स्थित हैं। इन्हीं दोनों समाधियों को शमथ और विपश्यना भी कहते हैं। शमथ के दो भेद हैं, उपचार और अर्पण।

शमथ का अर्थ है—पांच नीवरणों अर्थात विघ्नों का उपशम (पंच नीवरणानि समनट्ठेन समथं)। विघ्नों के शमन से चित्त की एकाग्रता होती है। इसलिए शमथ का अर्थ चित्त की एकाग्रता भी है। (समथोहि चित्तेकग्गता) शमथ का मार्ग लौकिक समाधि का मार्ग है। दूसरा मार्ग विपश्यना का मार्ग है। इसे लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं। विघ्नों के अर्थात् अन्तरायों के नाश से ही लौकिक समाधि में चारों ध्यानों का लाभ होता है। यथा—प्रथम ध्यान में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता ये पांच अंग रहते हैं। दूसरे ध्यान में वितर्क और विचार नहीं रहते, केवल प्रीति, सुख और एकाग्रता, ये तीन अंग रह जाते हैं। तीसरे ध्यान में प्रीति भी नहीं रह जाती, केवल सुख और एकाग्रता ये दो ही अंग रह जाते है। चौथे ध्यान में सुख भी नहीं रहता केवल उपेक्षा-सहित एकाग्रता मात्र रह जाती है।

नीवरण इस प्रकार हैः—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमिद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा। कामच्छन्द 'विषयों में अनुराग' को कहते

है। जब चित्त नाना विषयों में लालायित होता है तब एक आलम्बन में समाहित नहीं होता। 'व्यापाद' द्रोह को कहते हैं। यह प्रीति का प्रतिपक्ष (विरोधी) धर्म है। 'स्त्यान' चित्त की 'अकर्मण्यता' और 'मिद्ध' आलस्य को कहते हैं। वितर्क स्त्यानमिद्ध का प्रतिपक्ष है। औद्धत्य का अर्थ है—अव्यवस्थित चित्तता और कौकृत्य 'खेद पश्चात्ताप' को कहते हैं। सुख औद्धत्य-कौकृत्य का प्रतिपक्ष है। विचिकित्सा संशय को कहते हैं! विचार विचिकित्सा का प्रतिपक्ष है।

विपश्यना विशेष दर्शन या विशिष्ट ज्ञान का नाम है।

जिस समय इस ज्ञान का उदय होता है कि सब अनित्य, दुःख तथा अनात्म हैं, उस समय विपश्यना का प्रादुर्भाव होता है। बौद्ध शास्त्रों में पुद्गल (जीव) एक चित्त सन्तति (प्रवाह) है। आत्मा नाम का नित्य, ध्रुव और स्वरूप से अविपरिणाम धर्म वाला कोई पदार्थ नहीं है, पंच स्कन्ध मात्र है। ये पंच स्कन्ध क्षण-क्षण में उत्पद्यमान और विनाशमान हैं। पहले इसका ज्ञान होना चाहिये कि न आत्मा है और न आत्मीय। जो अनित्यता, दुःखता और अनात्मता के स्वरूप को देखता है वह यथार्थ भूतदर्शी है उसी को विपश्यना की प्राप्ति होती है।

विपश्यना प्रज्ञा का मार्ग है। इसे लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं। इस मार्ग का अनुगामी विपश्यनायिक कहलाता है। अर्थात् पाँच नीवरणों पर विजय प्राप्त कर जो समाधि प्राप्त होती है उसे शमथ समाधि कहते हैं। और अनित्य, दुःख, अनात्म पर समाधि प्राप्त कर जो संयोजनों का प्रहाण करता है उसे विपश्यना समाधि कहते हैं। पहले को 'लौकिक' और दूसरे को 'लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं।

प्रज्ञा—प्रज्ञा का अर्थ है—परम ज्ञान। यह चित्त का सर्वोपरि विकास है; जिसके राग-द्वेष और मोह प्रतिबंधक हैं। जब राग, द्वेष और मोह रूप चित्तमल (क्लेश) दूर हो जाते हैं तब प्रज्ञा आलोक का सम्यक् उदय होता है और तब मनुष्य को [illegible]

रहस्य और अनित्य, दुःख अनात्म का ज्ञान होता है। प्रज्ञा में तृष्णा को जड़ मूल से खोद डालने की शक्ति है। तृष्णा दुःखों का कारण है। इसलिये दुःखों से बचने के लिए तृष्णा का मूलोच्छेदन करना चाहिए। शील का पालन करने से तृष्णा की वृद्धि रुक जाती है। तृष्णा को दुर्बल करने के लिये समाधि का अभ्यास करना चाहिए और तृष्णा का मूलोच्छेदन करने के लिए प्रज्ञा का लाभ करना आवश्यक है। इसी शील, समाधि और प्रज्ञा के अनुशीलन को मध्यम मार्ग कहते हैं।

भगवान् बुद्ध के धर्म को समझने के लिये चतुरार्यसत्य को समझना बहुत ही आवश्यक है। चतुरार्य सत्य क्या है? दुःख, दुःख का समुदय (कारण) दुःख निरोध और दुःख विरोध का मार्ग।

(१) दुःख क्या है? जन्म दुःख है मरण दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, रोगी होना दुःख है, शोक दुःख है, इच्छाओं का पूर्ण न होना दुःख है, अनिच्छित की प्राप्ति दुःख है। संक्षेप में कहें तो पाँच उपादान स्कंध ही दुःख है।

(२) दुःख का कारण या समुदाय क्या है? दुःख का कारण अविद्या और तृष्णा है। अविद्या और तृष्णा से दुःख कैसे उत्पन्न होता है? अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम रूप के होने से षडायतन, षडायतन के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, रोगी होना, मरण, शोक करना, रोना, पीटना, चिन्ता, परेशानी आदि नाना विध दुःखों की उत्पत्ति होती है।

(३) दुख निरोध क्या है? जिस प्रकार दुःख समुदय हुआ है उसी क्रम से उसका निरोध भी होता है, अर्थात् अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान

का निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध, नाम-रूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षड़ायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से जरा, मृत्यु, दुःख, दौर्मनस्य, उपायाप्त आदि सम्पूर्ण दुःखों का निरोध होता है। इसी को निर्वाण कहते हैं।

दुःख निरोध गामी

यह आर्य आष्टांगिक मार्ग क्या है

(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाणी, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५)सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक स्मृति (८) सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टि क्या है? (१) दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध और दुःख निरोध का मार्ग। इन चार आर्य सत्यों को और (२) प्रतीत्य समुत्पाद नीति को तथा (३ दुराचार और दुराचार के कारणों एवं सदाचार और सदाचार के कारणों को ठीक-ठीक समझ लेना सम्यक् दृष्टि कहलाता है।

सम्यक संकल्प क्या है? (१ नैष्क्रम्य संकल्प, (२) अव्यापाद संकल्प और (३) अविहिंसा संकल्प अर्थात् काम तृष्णा रहित संकल्प क्रोध भाव रहित संकल्प और हिंसा भाव रहित संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं।

सम्यक वाणी क्या है? (१) मिथ्या वचन बोलना, (२) चुगली करना (३) कड़ुवा वचन बोलना (४) बेमतलब बोलना, इन-चार वाणी के दोषों से रहित वचन बोलना सम्यक् वाणी है।

सम्यक् कर्मान्त क्या है ? (१) हिंसा करना, (२) चोरी करना या दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के लेना, (३) व्यभिचार करना, (४) नशा करना और (५) जुआ खेलना, ये पांच शारीरिक पापों के त्यागपूर्वक कर्तव्य कर्मों का करना सम्यक् कर्मान्त है।

सम्यक् आजीविका क्या है ? (१) हिंसा या हिंसा के सहायक कार्यों के द्वारा आजीविका त्याग, (२) पर-धन अपहरण के द्वारा आजीविका का त्याग, (३) व्यभिचार के द्वारा आजीविका का त्याग, (४) विशाक्त और नशीली वस्तुओं के व्यापार तथा जुए के द्वारा आजीविका का त्याग अर्थात् इन असम्यक् जीविकाओं के त्यागपूर्वक जीविकोपार्जन करना सम्यक् आजीविका कहलाता है।

सम्यक् व्यायाम क्या है ? चार प्रकार के सम्यक् प्रयत्न को सम्यक् व्यायाम कहते हैं। (१) ग्रहण की हुई बुरी आदतों को छोड़ना (२) न ग्रहण की हुई बुरी आदतों को उत्पन्न न होने देना, (३) न ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को ग्रहण करना और (४) ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को कायम रखना और वृद्धि करना। इन मानसिक प्रयत्न या कसरत को सम्यक् व्यायाम कहते हैं।

सम्यक् स्मृति क्या है ? स्मृति का अर्थ है—जागरुकता। सम्यक् स्मृति भी चार हैं। (१) कायानुपश्यी होना अर्थात् उठना, बैठना, काम करना, सोना और चलना आदि कायिक कार्यों में जागरुक रहना (२) वेदनानुपश्यी होना अर्थात् सुःख-दुःख आदि वेदनाओं में जागरुक रहना (३) चित्तानुपश्यी होना अर्थात् रागयुक्त चित्त को रागयुक्त जानना, राग रहित चित्त को राग रहित जानना, द्वेष युक्त चित्त को द्वेष युक्त जानना और द्वेष रहित चित्त को द्वेष रहित जानना, मोह युक्त चित्त को मोह युक्त और मोह रहित चित्त को मोह रहित जानना, इत्यादि चित्त की अवस्थाओं के प्रति सचेत रहना (४) धर्मानुपश्यी होना अर्थात् मन के विषयों के प्रति जागरुक रहना मन के विषय जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, आलस्य, उद्धतपन,

पश्चात्ताप और संशय आदि जो भी मन के धर्म हैं उनके प्रति जागरुक रहना, सतर्क रहना। इस प्रकार शरीर वेदना, चिन्त और धर्म इन चारों के कर्मों में जागरुकता और सतर्कता पूर्वक विहार करना सम्यक् स्मृति कहलाता है।

सम्यक् समाध क्या है? कुशल चित्त की एकाग्रता का नाम समाधि है। चारों स्मृति उपस्थान समाधि के निमित्त हैं। और चारों सम्यक् व्यायाम समाधि की सामग्री है। इन्हीं आठों धर्मों के सेवन करने से भावना करने और बढ़ाने का नाम सम्यक् भावना है।

इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को शील, समाधि और प्रज्ञा के भेद से तीन विभाग किये जाते हैं।

१	सम्यक् दृष्टि	प्रज्ञा
२.	सम्यक् संकल्प	
३.	सम्यक्, वाणी	शील
४.	सम्यक् कर्मान्त	
५.	सम्यक् आजीविका	
६.	सम्यक् व्यायाम	समाधि
७.	सम्यक् स्मृति	
८.	सम्यक् समाधि	

निर्वाण क्या है?

बौद्ध दर्शन में चार तत्व हैं—चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण। चित्त के भेद १२१ प्रकार के हैं। ५२ प्रकार के चेतसिक के भेद हैं। रूप के भेद २८ प्रकार के हैं। निर्वाण के भेद दो प्रकार के हैं।

निर्वाण के स्वरूप के भेद का वर्णन इस प्रकार है—क्लेश निर्वाण और स्कंध निर्वाण। रागादि दस क्लेशों के निर्वाण को क्लेश निर्वाण कहते हैं, जो इसी शरीर में प्राप्त होता है, जिसको कि अर्हन्त

अवस्था या जीवन-मुक्त अवस्था कहते हैं। स्कंध निर्वाण इस जीवन के बाद प्राप्त होता है। इसको विदेह मुक्ति भी कहते हैं। रागादि दस क्लेश ये हैं:—

(१) राग, (२) द्वेष, (३) मोह, (४) मान, (५) मद, (६) मिथ्यादृष्टि, (७) स्त्यान-मिद्ध, (८) औद्धत्य-कौकृत्य, (९) विचिकित्सा और (१०) निर्लज्जता।

क्लेश निर्वाण की अवस्था का वर्णन भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार किया है:—

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्तं यस्स न कम्पति।
असोकं विरजं खेमं एतं मङ्गलमुत्तमं॥

—मङ्गल सुत्त ११

इस अवस्था को प्राप्त हुआ चित्त लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के प्राप्त होने से विचलित नहीं होता तथा शोक, पाप और भय से रहित परम मङ्गल मय हो जाता है।

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दा पसन्सासु न समिञ्जन्ति पण्डिता॥

—धम्मपद ६।६

जिस प्रकार अचल पहाड़ हवा से नहीं डोलता, उसी प्रकार विद्वान् लोग निन्दा और प्रशंसा से कम्पित नहीं होते।

संतं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स उपसंतस्स तादिनो॥

—धम्मपद ७।७

सम्यक् ज्ञान के द्वारा जिसने राग और द्वेष के अग्नि को शान्त कर लिया है। ऐसे जीवन मुक्तों के मन, वचन और कर्म शान्त हो जाते हैं।

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीणस्स परिलाहो न विज्जति ॥
—धम्मपद ७।१

उत्पति-विनाश धर्म वाले मार्ग से जो निवृत हो गया है। जो शोक रहित और सर्वशा विमुक्त है । जिसकी सभी ग्रन्थियां क्षीण हो गई हैं उसके लिए फिर दुःख और परिताप कुछ नहीं है ।

सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठे व धम्मे निच्छातो ।
निब्बूतो सीतिभूतो सुखपटि सम्वेदी ब्रह्मभूते न अत्ताना विहरति॥
—दीघनिकाय, संगीत सुतन्त १।४

जो न अपने को संताप पहुँचाता है और न दूसरों को । वह इसी जन्म में शोक रहित सुखो, शीतल, सुखानुभवी, ब्रह्मभूत आत्मा के साथ विहार करता है ।

दूसरा स्कंध निर्वाण है । प्रत्येक व्यक्ति चित्त और शरीर से संयुक्त है । इसके सिवाय उसमें और कुछ नहीं है । शरीर (Material existance) कहलाता है । और चित्त के चार प्रकार हैं—वेदना (Feeling), संज्ञा (Conceptual Knowledge) संस्कार Sythetic mental states) और विज्ञान (Consciousness) इन पांचों को पंच-स्कन्ध कहते हैं। किसी व्यक्ति को स्थिति इन पांचों स्कंधों के समवाय (Synthesis) पर निर्भर है ।

जब अर्हन्त (जीवन मुक्त) की प्रज्ञा द्वारा तृष्णा निरुद्ध हो जाती है तब चित्त-सन्तति का भी निरोध हो जाता है। चित्त सन्तति के निरुद्ध हो जाने से फिर व्यक्तिगत पंच-स्कंधों का उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है । इसी का नाम स्कंध-निर्वाण है । इसके स्वरूप का वर्णन भगवान बुद्ध ने इस प्रकार किया है:—

"अत्थि भिक्खवे ! तदायतनं, यत्थनेव पठवी न आपो न तेजो न वायो न आकासानञ्चायतनं न विञ्ञाणानञ्चायतनं

न आकिञ्चञ्ञायतनं न नेव सञ्ञानासञ्ञायतनं नायं लोको न परलोक उभो चन्दिमसूरिया, तदाहं भिक्खवे ! नेव आगतिं वदामि न गतिं न ठितिं न चुतिं न उपपत्ति, अप्पतिट्ठं अपावत्तं अनारम्मणमेव तं एसेवन्तो' दुक्खस्सा' ति ॥ १ ॥

हे भिक्षुओ ? वह एक आयतन है, जहां न पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है, न आकाशानञ्चायतन है, न विज्ञानाञ्चायतन है, न आकिञ्चायतन है, न नैवसंज्ञानासज्ञायतन है। वहां न तो यह लोक है, न परलोक है, और न चांद-सूरज हैं। भिक्षुओ ? न तो मैं उसे 'अगति' और न 'गति' कहता हूँ। न 'स्थिति' और न 'च्युति' कहता हूँ, उसे उत्पति भी नहीं कहता हूँ। वह न तो कहीं ठहरा है, न 'प्रवर्तित' होता है और न कोई उसका आधार है। यही दुःखों का अंत है।

"अत्थि भिक्खवे ! अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, नो चे तं भिक्खवे ! अभिवस्स अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, नयिध जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणंपञ्ञायेथ यस्मा च खो भिक्खवे ! अस्थि अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, तस्मा जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायती' ति ॥ ३ ॥

भिक्षुओं ? (निर्वाण) अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत है। भिक्षुओ ! यदि वह अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत नहीं होता तो जात, भूत, कृत और संस्कृत का व्युपशम नहीं हो सकता। भिक्षुओं ? क्योंकि वह अजात, अभूत अकृत और असंस्कृत है। इसीलिए जात, भूत, कृत और संस्कृत का व्युपशम जाना जाता है ॥ ३ ॥

"निस्सितस्स च चलितं, अनिस्सितस्स चलितं नत्थि, चलिते असमति पस्सद्धि, पस्सद्धिया सति रति न होति, रतिया असति आगतिगति न होति, आगतगतिया असति चुतूपपातो न होति, चुतूपपाते असति नेवेध न हुरं न उभयमन्तरे, एसेवन्तो दुक्खस्सा' ति ॥ ४ ॥

आत्म-भाव में पड़े हुए का ही चित्त चलता है और न पड़े हुए का नहीं चलता। चित्त न चलने से प्रश्रब्धि (=शान्तभाव) होती है। प्रश्रब्ध होने से राग उत्पन्न नहीं होता। राग नहीं होने से आवागमन नहीं होता, आवागमन नहीं होने से मृत्यु और जन्म भी नहीं होता। मृत्यु और जन्म न होने से, न यह लोक है न परलोक है और न उसके बीच में यही दुःखों का अन्त है ॥ ४ ॥

"दुद्दसं अनत्तं नाम, न हि सच्चं सुदस्सनं पटिविद्धा तण्हा जानतो, पस्सतो न'त्थि किञ्चनं'ति ॥ २ ॥

—उदान ८ पाठलिगामिय वग्गो

अनात्म-भाव का समझना कठिन है। निर्वाण का समझना सहज नहीं है। ज्ञानी की तृष्णा जब नष्ट हो जाती है तब उसे रागादि क्लेश कुछ नहीं होते ॥ २ ॥

"अत्थि भिक्खवे ! अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं। नो चे तं भिक्खवे ! अभविस्स अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं नयिध जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायेथा'ति,

जातं भूतं समुप्पन्नं कतं सङ्खतमद्धुवं ;
जरामरणसङ्खतं रोगनीलं पभंगुणं ॥
आहारनेत्तिप्पभवं नालं तदभिनन्दितुं ।
तस्स निस्सरणं सन्तं अतक्कावचरं धुवं ॥
अजातं असमुप्पन्नं असोकं विरजं पदं ।
निरोधो दुक्खधम्मानं सङ्खारूपसमो सुखो'ति ॥

—इतिवुत्तकं, ४३ अजात-सुत्त २-२-६

भिक्षुओ ! अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत (निर्वाण) है।

भिक्षुओ ! यदि वह अजात, अभूत, अकृत और असंकृत (निर्वाण) नहीं होता तो जात, भूत, कृत और संस्कृत से मुक्ति ही न सिद्ध होती।

जो पैदा हुआ (जातं-भूतं-समुप्पन्नं), बनाया गया (=कृतं) संस्कृत, अध्रुव, जरा-मरणशील, रोगों का घर, क्षण-भंगुर आहार पर स्थित है। उसका अभिनन्दन करना युक्त नहीं।

उससे मुक्ति, शान्त अतर्कावचर, ध्रुव, अजात, असमुत्पन्न, शोक-रहित और राग-रहित पद है, वही दुःख धर्मों का निरोध, संस्कारों का उपशमन सुख है।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं,
विरत्त चित्ता आयतिके भवस्मिं।
ते खीण बीजा अविरुल्हिच्छन्दा;
निब्बन्ति धीरा यथायम्पदीपो॥

—रतन-सुत्तं

अर्हन्तों (जीवन-मुक्तों) के पुराने सब कर्म क्षीण हो जाते हैं और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती, पुनर्जन्म में उनकी आसक्ति नहीं होती और उनकी कोई इच्छा बाकी नहीं रहती है। अतः वे सब धीरगण बुझे हुए प्रदीप की तरह निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्,
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
एवं कृती निर्वृत्तिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्,
क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥

—सौन्दरानन्द

जिस प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ दीपक न पृथ्वी को जाता है न आकाश को ही, न दिशाओं और विदिशाओं को ही। केवल

स्नेह (तेल) के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है। उसी तरह निर्वाण को प्राप्त हुआ अर्हत् न पृथ्वी को जाता है न आकाश को, न दिशाओं-विदिशाओं को ही। केवल क्लेश के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है।

यद्यपि यह "निर्वाण" बुद्ध-धर्म का सर्वोच्च ध्येय है तथापि इसके साथ ही बुद्ध-धर्म की एक और भी देन है। वह सर्व प्राणियों का हित करना; जिसको बोधिसत्व का व्रत कहते हैं जिसका फल बुद्ध होना है। बुद्ध की जातक-कथा में यह बात अच्छी तरह से दिखलाई गई है कि निर्वाण जाने की योग्यता प्राप्त करके भी बुद्ध ने निर्वाण में जाना पसन्द नहीं किया बल्कि साढ़े पांच सौ जन्मों तक मनुष्य जाति को उद्‌बोधन करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे तथा अपने शिष्यों को भी यही उपदेश दिया कि "हे भिक्षुओ ! तुम लोग सबके हित और सुख के लिए चारो तरफ़ जाओ, घूमो। स्वार्थ-रहित अपनी दया से प्रेरित होकर पूर्ण परिशुद्ध संयम-मय, करुणामय, मैत्री-मय और ज्ञान-मय जीवन का प्रकाश करो। मनुष्य जाति के कल्याण के लिये बौद्ध-धर्म का यह उच्च आदर्श है।

निर्वाण तत्व के समझने के लिए प्रतीत्य-समुत्पाद नीति का भी समझना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रतीत्य समुत्पाद नीति

बुद्ध-धर्म में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद नहीं है। शाश्वतवाद का अर्थ है किसी नित्य-कूटस्थ आत्मा का विश्वास करना। उच्छेदवाद का तात्पर्य है शरीर के साथ आत्मा का भी मानना।

बुद्ध-धर्म के अनुसार इस जगत का व्यापार कार्य-कारण नियम के अनुसार चल रहा है। कोई भी घटना अपने पूर्व घटना के कारण से है और वह अपने पर-घटना का स्वयं भी कारण है। मनुष्य का व्यक्तित्व भी कार्य-कारण नियम के अधीन है। जिस कार्य-कारण-नियम

के अधीन मनुष्य का व्यक्तित्व है उसे "प्रतीत्य-समुत्पाद' कहते हैं। प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ है—"इसके होने से यह होता है" जैसे:—

अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, शारीरिक दुःख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस प्रकार इन सारे दुःख-स्कन्धों अर्थात् रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान की उत्पत्ति होती है।

(१) अविद्या (=चतुरार्य सत्य या प्रतीत्य समुत्पाद के अज्ञान) के होने से संस्कार उत्पन्न होता है। (२) संस्कार (=शुभाशुभ कर्मों का सूक्ष्म अंश) के होने से विज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् मृत्यु के बाद चित्त-सन्तति जन्मान्तर में आ जाती है। (३) विज्ञान के होने से नाम-रूप अर्थात् मानसिक और भौतिक अवस्था या जड़-चेतन की स्थिति का भेद होता है। (४) नाम-रूप के होने से षडायतन अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक् और मन ये छः इन्द्रियां प्रकट होती हैं। (५) षडायतन के होने से स्पर्श अर्थात् रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म इन छः विषयों के साथ छहों इन्द्रियों का स्पर्श होता है। (६) स्पर्श के होने से वेदना अर्थात् सुख-दुःखादि वेदनायें उत्पन्न होती हैं। (७) वेदना के होने से तृष्णा उत्पन्न होती है। (८) तृष्णा के होने से उपादान अर्थात् विषयों को ग्रहण करने की प्रवृति या आसक्ति होती है। (९) उपादान के होने से भव अर्थात् विषयों की प्राप्ति के लिए जीवन का प्रगाढ़ प्रयत्न होता है। (१०) भव के होने से जाति अर्थात् व्यक्तित्व की सन्तति आगे को जन्मान्तर में चालू रहती है। (११) जाति के होने से जरा, मरण, शारीरिक दुःख, मानसिक दुःख इत्यादि दुःख-चक्र में पड़ा प्राणी असह्य दुःखों को सहता है।

प्रतीत्य समुत्पाद नीति "शाश्वतवाद" और "उच्छेदवाद" इन दोनों अन्तों का परित्याग करके मध्य पथ—"कार्य-कारणवाद" या "सन्ततिवाद" का ही प्रदर्शन करता है। यही सन्ततिवाद बुद्ध का "अनात्मवाद" है। इस प्रतीत्य समुत्पाद नीति के द्वारा हम लोग देखते हैं कि शाम की ज्वलित दीपशिखा प्रातःकाल तक वही नहीं रहती और भिन्न भी नहीं रहती, अर्थात् शाश्वत भी नहीं है उच्छेद भी नहीं है। तब क्या है? सन्तति (=कार्य-कारण=हेतु-फल) का प्रवाह है—"न च सो न च अञ्ञो।"

प्रतीत्य समुत्पाद नीति या निर्वाण के संबंध में महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी का कहना है कि—"बुद्ध ने प्रतीत्य-समुत्पाद के जिस महान् और व्यापक सिद्धान्त का आविष्कार किया था, उसके व्यक्त करने के लिये उस वक्त अभी भाषा भी तैयार नहीं हुई थी; इसलिए अपने विचारों को प्रकट करने के वास्ते जहाँ उन्हें प्रतीत्य समुत्पाद, सत्काय जैसे कितने ही नये शब्द गढ़ने पड़े; वहाँ कितने ही पुराने शब्दों को उन्होंने अपने नये अर्थों में प्रयुक्त किया। धर्म को उन्होंने अपने खास अर्थ में प्रयुक्त किया, जो कि आज के साइंस की भाषा में वस्तु की जगह प्रयुक्त होनेवाली घटना शब्द का पर्यायवाची है। ये धर्मा हेतु प्रभवः (= जो धर्म है वह हेतु से उत्पन्न हैं) यहां भी धर्म विच्छिन्न-प्रवाह वाले विश्व के कण-तरङ्ग अवयव को बतलाता है।

"निर्वाण—निर्वाण का अर्थ है बुझना दीपक। याआग का जलते-जलते बुझ जाना। प्रतीत्य समुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूप से उत्पन्न) नाम-रूप (= विज्ञान = चित्त और भौतिक तत्व) तृष्णा के गारे से मिलकर जो एक जीवन-प्रवाह का रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं, इस प्रवाह का अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या ईंधन के जल चुकने तथा नये की आमदनी के न होने से जैसे दीपक या अग्नि बुझ जाते हैं, उसी तरह आस्रवों=चित्तमलों (काम-भोगों और आत्मा के नित्यत्व आदि की दृष्टियों) के क्षीण होने पर यह

आवागमन नष्ट हो जाता है। निर्वाण बुझना है, यह उसका शब्दार्थ ही बतलाता है। बुद्ध ने अपने इस विशेष शब्द को इसी भाव के द्योतन के लिये चुना था। किन्तु साथ ही यह कहने से इन्कार कर दिया कि निर्वाणगत पुरुष (=तथागत) का मरने के बाद क्या होता है। अनात्मवादी दर्शन में उसका क्या हो सकता है, यह तो आसानी से समझा जा सकता है किन्तु वह ख्याल "बालानं त्रासजनकम्" (अज्ञों को भयभीत करनेवाला) है। इसलिये बुद्ध ने उसे स्पष्ट नहीं कहना चाहा। उदान के इस वाक्य को लेकर कुछ लोग निर्वाण को एक भावात्मक ब्रह्मलोक जैसा बनाना चाहते हैं—

"हे भिक्षुओ! निर्वाण अ-जात, अ-भूत, अ-कृत=अ-संस्कृत है।" किन्तु इस निषेधात्मक विशेषण से किसी भावात्मक निर्वाण को सिद्ध तभी कर सकते थे, जब कि उसके 'आनन्द का भोगने वाला कोई नित्य ध्रुव आत्मा होता। बुद्ध ने निर्वाण उस अवस्था को कहा है, जहां तृष्णा क्षीण हो गई, आस्रव=चित्तमल (=भोग और विशेष मतवाद की तृष्णाएँ) जहाँ नहीं रह जाते। इससे अधिक कहना बुद्ध के अ-व्याकृत प्रतिज्ञा की अवहेलना करनी होगी।"

यह राहुल जी का दृष्टिकोण है। मेरे विचार में बौद्ध तत्वज्ञान को समझने के लिये यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये कि बुद्ध का अनात्मवाद, शाश्वतवाद के विरुद्ध तो है, परन्तु वह उच्छेदवाद भी नहीं है। बल्कि संततिवाद है। हम इसे त्रिपिटकाचार्य स्थविर जगदीश काश्यप जी एम. ए. के शब्दों में यों समझ सकते हैं:—

"शाश्वत दृष्ठि और उच्छेद दृष्टि—मरने के बाद कूटस्थ वही स्थिर आत्मा=जीव एक शरीर से निकलकर दूसरे में प्रवेश करता है, ऐसी मिथ्या धारणा को शाश्वत दृष्टि कहते हैं। और मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, वह नहीं रहता, ऐसी मिथ्या धारणा को उच्छेद दृष्टि कहते हैं इन दोनों अन्तों को छोड़ बौद्ध दर्शन मध्य का मार्ग बताता है। वह यह कि, चित्त की संतति प्रतीत्य समुत्पन्न हो एक योनि से

दूसरी योनि में प्रवाहित होती है। जिस प्रकार पहले पहर की प्रदीप-शिखा दूसरे पहर में बिलकुल वहीं नहीं रहती है और न अत्यन्त भिन्न हो जाती है। उसी तरह जन्मने वाला न तो बिलकुल वही है और न भिन्न। किन्तु उसका तादात्म्य संततिगत है।"

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि आत्मवाद के माने शाश्वतवाद और अनात्मवाद के माने उच्छेदवाद है। जैसा कि पाली निद्देश से भी प्रकट है :—

"अत्ताति सस्स दिट्ठि
निरत्ताति उच्छेद दिट्ठि।"

बौद्ध-दार्शनिक लोग शाश्वतवाद-दर्शन से अपने दर्शन को पृथक करने के लिये ही अनात्मवाद का प्रयोग करते हैं। परन्तु अनात्मवाद से उनका अभिप्राय उच्छेदवाद से नहीं बल्कि सन्ततिवाद से है। इसका तात्पर्य यह है कि बौद्धों का अनात्मवाद शाश्वतवाद से भी भिन्न है और उच्छेदवाद से भी भिन्न है। तो है क्या ? सन्ततिवाद, यही बौद्ध-दर्शन की अपनी विशेषता है और परमार्थ सत्य में तो न आत्मवाद है और न अनात्मवाद। जैसा कि भगवान् ने स्वयं कहा है—

उपायोहि धम्मेसु उपेति वादं,
अनूपयं केन कथं वदेय्य।
अत्तं निरत्तं न हि तस्स अत्थि,
अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बा' ति॥
(=दुट्ठकसुत्तं, सुत्तनिपात)

जिनमें किसी तरह की आसक्ति है वे ही तरह-तरह की धारणा वाले वादों में पड़ते हैं। और जिनमें किसी तरह की आसक्ति नहीं है, भला वे कैसे कोई वाद में पड़ सकते हैं ? उनके लिये न तो आत्मवाद है और न अनात्मवाद। उन्होंने सभी मिथ्यादृष्टियों को यहीं नष्ट कर दिया है।

अज्झत्तमेव उपसमे, नाञ्ञतो भिक्खु सन्तिमेसेय्य।
अज्झत्त' उपसन्तस्स, नत्थि अत्त' कुतो निरत्तं वा ॥५॥
(= तुवट्ठकसुत्त', सुत्तनिपात)

भिक्षु अपने भीतर ही शान्ति लाभ करे, किसी दूसरे से शान्ति पाने की आशा न करे। जिसने अपने भीतर ही शान्ति प्राप्त कर ली है, उसके लिये तो आत्मा ही नहीं तो फिर निरात्मा कहाँ से होगा ?

इस जगह एक और बात पर प्रकाश डालना बहुत उचित मालूम देता है कि जन्मना जाति या वर्णव्यवस्था को मानने वाले लोग कहा करते हैं कि परमेश्वर के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं और पैर से शूद्र। इसलिये ब्राह्मण उत्तम हैं और शूद्र अधम। तथा वे यह भी कहते हैं कि पूर्व-जन्म के पुण्य के कारण ब्राह्मण कुल में जन्म होता है और पाप-कर्म के कारण शूद्र और अछूत जाति में जन्म होता है। इस धारणा के विरुद्ध भारत के महान विचारक भगवान् बुद्ध का कथन है कि—

"भिक्षुओ! जितनी महा नदियां हैं, जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती (राप्ती), शरभू (सरयू, घाघरा) और मही (गंडक) वे सभी महासमुद्र को प्राप्त होकर अपने पहले नाम-गोत्र को छोड़ देती हैं और महासमुद्र के नाम से प्रसिद्ध होती हैं। ऐसे ही भिक्षुओं! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण तथागत के धर्म-विनय में प्रव्रजित हो पहले के नाम गोत्र को छोड़ते हैं, शाक्य पुत्रीय श्रमण के ही नाम से प्रसिद्ध होते हैं।"

(विनय-पिटक, चुल्लवग्ग ४)

कह सकते हैं कि यह उपदेश संन्यासियों के सम्बन्ध में है, तो गृहस्थों के विषय में भी सुनिये—

एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन नामक विहार में विराजमान थे तो आश्वलायन नामक ब्राह्मण बहुत से ब्राह्मणों

के साथ उपस्थित हुआ और उचित स्थान पर बैठकर नम्रता पूर्वक भगवान् बुद्ध से कहने लगाः—

'हे गौतम! ब्राह्मण लोग ऐसे कहा करते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं दूसरे सब हीन वर्ण हैं; ब्राह्मण लोग ही शुक्ल वर्ण हैं और दूसरे सब लोग काले वर्ण हैं; ब्राह्मण लोग ही शुद्ध हैं और दूसरे लोग अशुद्ध हैं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, वह ब्रह्मज हैं, उन्हें स्वयं ब्रह्मा जी ने निर्मित किया है। ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मा के वारिस हैं। हे गौतम! इस विषय में आपका क्या मत है?"

भगवान् बोले—आश्वलायन? तुमने अवश्य देखा होगा कि ब्राह्मणों के घर ब्राह्मणी (उनकी स्त्रियाँ) ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म से होती हैं, गर्भ धारण करती हैं, प्रसव करती अर्थात् बच्चा जनती हैं और अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। तब इस प्रकार स्त्री की योनि से उत्पन्न होते हुए भी ब्राह्मण लोग ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने इत्यादि अपने बड़प्पन और अहंकार की बातें क्यों करते हैं?

"क्या आश्वलायन! तुमने सुना है कि यवन (यूनान) कंबोज (ईरान) में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं— आर्य और दास। आर्य से दास हो सकते हैं और दास से आर्य हो सकते हैं। (आर्यो हुत्वा दासो होति दासो हुत्वा आर्यो होती'ति)

"हां भगवन्! मैंने सुना है।"

आश्वलायन! तब ब्राह्मण लोग किस बल पर कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं दूसरे नहीं।"

(सुत्तन्त पिटक, मज्झिमनिकाय—अस्सलायन सुत्त)

बुद्ध के इस कथन से कोई ब्राह्मण या अब्राह्मण के घर जन्म लेने से ब्राह्मण या अब्राह्मण नहीं होता और अपनी अवस्था या परिस्थिति बदलने के विषय में भी बुद्ध की उपरोक्त उक्ति स्पष्ट है।"

मनुष्यों में ब्राह्मणादि जाति-भेद प्राकृतिक नहीं है। बल्कि काल्पनिक है। समाज में वंशपरम्परा से जन्मगत वर्ण या जाति मानना उचित नहीं है। इस विषय में बुद्ध का कथन है कि:—

"शरीरधारी जितने भी प्राणी हैं उनमें जाति को पृथक करने वाले लक्षण दीखते हैं; परन्तु मनष्य में जाति को पृथक करने वाले उस प्रकार के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते, मनुष्यों में जो कुछ पृथकता है वह तुच्छ और काल्पनिक है ॥ १८ ॥"

"कारण, इस जगत में मनुष्यों में नाम और गोत्रादि कल्पित हैं, वे सज्ञामात्र हैं, भिन्न-भिन्न स्थानों में उनकी कल्पना हुई है। वे साधारण लोगों के मत से उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ।"

ज्ञान-हीन लोगों में इस प्रकार की मिथ्यादृष्टि बहुत काल से प्रचलित होती आई है। वे लोग कहा करते हैं कि ब्राह्मण जाति में जन्म लेने से ही ब्राह्मण होता है ॥ ५६ ॥

परन्तु जन्म के द्वारा न कोई ब्राह्मण होता है और न अब्राह्मण। कर्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता है और कर्म के द्वारा ही अब्राह्मण ॥ ५७ ॥"

(सुत्तनिपात, वासेट्ठसुत्त)

"न जटा से, न गोत्र से और न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है। मैं ब्राह्मणी माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। जिसके पास कुछ नहीं है और जो कुछ नहीं चाहता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।" (धम्मपद, ब्राह्मणवग्ग ११–१४)

"न तो कोई जन्म से वृषल (शूद्र या चांडाल) होता है और न ब्राह्मण, कर्म से वृषल होता है तथा कर्म से ही ब्राह्मण ॥२८॥"

(वसल सुत्त)

अंगुत्तर निकाय में भगवान् बुद्ध ने एक जगह कहा है:—

"यदि ऐसा माने कि जो कुछ सुख-दुःख या उपेक्षा की वेदना

होती है सभी पूर्व कर्म के फलस्वरूप ही है, तो भिक्षुओ ! जो प्राणातिपाति हैं, चोर हैं, व्यभिचारी हैं, झूठे हैं, चुगलखोर हैं, कठोर भाषी हैं, गप्पी हैं, लोभी हैं, द्वेषी हैं, मिथ्यादृष्टि वाले हैं, वे वैसा पूर्वजन्म के फलस्वरूप ही होंगे, इसलिये भिक्षुओ ! जो ऐसा मानते हैं कि सब कुछ पूर्व कर्म के फलस्वरूप होता है तो उनके मत से न तो अपनी इच्छा होनी चाहिये, न अपना प्रयत्न ही होना चाहिये। उसके लिये न तो किसी काम का करना होगा और न किसी काम से विरत रहना।"

In refuting the view that "'Whatsoever weal or woe or neutral feeling is experienced, all that is due to some previous action" the Buddha says.

"So, then, owing to a previous action, men will become, murderers, thieves, unchaste, liars, slanderers, abusive, babblers, covetous, malicious and perverse in view. Thus for those who fall back on the former deed as the essential reason there is neither desire to do, nor effort to do, nor necessity to do this deed or abstain from that deed."

Anguttara Nikaya

Vol. I Page 157

उपरोक्त बुद्ध वचनों से यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि बुद्ध आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, आदि सामाजिक भेद या व्यवस्था जन्म से नहीं मानते थे और न उसे प्राकृतिक अटल नियम ही मानते थे तथा

न उसे पूर्व जन्म के कर्मों का फल ही मानते थे। बुद्ध की शिक्षा का यही सार है कि मनुष्य अपने इसी जीवन में अपनी अवस्था या परिस्थिति बदल सकता है। जो एक व्यक्ति के लिये है वही समाज के लिये भी समझना चाहिये।

बुद्ध ने अपनी यह आवाज़ ढाई हज़ार वर्ष पहले उठाई थी। सुत्तपिटक के कई स्थानों पर इस ऊँच-नीच भाव का खण्डन है। दीघ निकाय के अम्बठ, अग्गञ्ञ और सोणदंड, मज्झिम निकाय के अस्सलायन और मधुर तथा खुद्दकनिकाय (सुत्तनिपात) के वासेट्ठसुत्त में इस पर बहुत कहा है। भारत की राष्ट्रीय शक्ति को निर्बल कर समय-समय पर उसे परतंत्र करने में यह ऊँच-नीच भावपूर्ण जातिभेद एक प्रधान कारण रहा है। बुद्ध ने इसके विरुद्ध उपदेश ही नहीं दिया बल्कि चांडाल तक के लिये उन्होंने अपने भिक्षु-संघ का सदस्य बनने का अधिकार दे दिया। इसके कारण यह भेद-भाव कम हुआ। जिसके फल स्वरूप मौर्य भारतव्यापी साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुए। मौर्य-वंश के बाद शुंगों के हाथों में राज्य-शासन आया। उन्होंने ब्राह्मणों की सलाह से उत्साहित हो फिर से जाति-भेद के विष को बढ़ाना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि भारत न फिर से सागर, हिमालय और हिन्दू कुश तक की अपनी सीमा को अक्षुण्ण रख सका, और न विदेशी शत्रुओं शक, हूण, तुर्क आदि की अधीनता और अत्याचारों से अपने को बचा सका। यह रोग २५०० वर्ष पहले जितना था उससे अब कई गुना अधिक बढ़ गया है। इसके हटाये बिना भारत का भविष्य उज्वल नहीं हो सकता। अतः बुद्ध की शिक्षा की जितनी आवश्यकता ढाई हज़ार वर्ष पहले थी, उससे कहीं अधिक इस समय है।

त्रिरत्न वन्दना पूर्वक अब हम इस पुस्तक को समाप्त करते हैं: –

सर्वदृष्टि प्रहाणाय यः सद्धर्ममदेशयत्।
अनुकम्पामुपादाय तं नमस्सामि गौतमम्॥

अनित्यमखिलं दुःखमनात्मेति प्रवादिने।
नमो बुद्धाय धर्माय संघाय च नमोनमः॥

सब प्रकार की मिथ्या दृष्टियों (wrong views) को दूर करने के निमित्त जिन्होंने कृपा पूर्वक सद्धर्म की देशना की, उन गौतम बुद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ।

सभी संस्कारों को अनित्य, दुःख तथा अनात्म प्रदर्शित करनेवाले बुद्ध को नमस्कार है और नमस्कार है धर्म तथा संघ को॥

यो सन्निसिन्नो वर बोधि मूले,
मारं ससेनं महति विजेत्वा।
सम्बोधि मागञ्छि अनन्तञाणो,
लोकोत्तमो तं पणमामि बुद्धं॥
अट्ठङ्गिको अरिय पथो जनानं,
मोक्खप्पवेसा उजुको व मग्गो।
धम्मो अयं संति करो पणीतो,
नीय्याणिको तं पणमामि धम्मं॥
सङ्घो विसुद्धो वर दक्खिनेय्यो,
सान्तिन्द्रियो सब्बमलप्पहीणो।
गुणेहि नेकेहि समिद्धिपत्तो,
अनासवो तं पणमामि सङ्घं॥

जिन अनन्त ज्ञानी लोकोत्तम भगवान् बुद्ध ने श्रेष्ठ बोधि वृक्ष के नीचे विराजमान होकर महती सेना सहित मार (कामदेव) को परास्त करके सम्बोधि (सम्यक् ज्ञान) लाभ किया था, उन भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो धर्म श्रेष्ठ आठ अंगों से युक्त, सबके मोक्ष प्राप्त करने का सरल और सीधा मार्ग, परम शान्ति दायक, अतिश्रेष्ठ और परम निर्वाण में ले जानेवाला है। उस परम पवित्र धर्म को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो सङ्घ विशुद्ध और श्रेष्ठ दान का पात्र है, जिसकी इन्द्रियां शान्त हो गई हैं, जो सब प्रकार मलविक्षेप, आवरण से रहित तथा जो अनेक प्रकार के अनघ गुणों से विभूषित और आश्रव (तृष्णा) रहित है; मैं उस सङ्घ को प्रणाम करता हूँ।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चि दुक्खमागमा॥

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें, सब कल्याणकर दृष्टि से एक दूसरे को देखें, किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो।

गूढ़ार्थ-बोधिनी

अर्हत्—जीवन्मुक्त। अर्हत् पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और श्रावक अर्हत्। इनमें जो पुरुष बिना किसी गुरू की सहायता के स्वयं अपने प्रतिभाबल से सर्वज्ञता या पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण लाभ करते हैं वे बुद्ध और प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं और जो पुरुष बुद्ध प्रदर्शित पथ पर चल कर सर्वज्ञता और निर्वाण लाभ करते हैं वे श्रावक अर्हद् कहलाते हैं। बुद्ध तथा प्रत्येक बुद्ध में यह अन्तर है कि कर्म ऋद्धि, ज्ञान-ऋद्धि आदि सब प्रकार की आलौकिक प्रतिभा तथा जिनमें असंख्य अप्रमेय प्राणियों के उद्बोधन करने की प्रतिभा होती है, वे बुद्ध कहलाते हैं और जो अपने प्रतिभाबल से अन्य प्राणियों का उद्बोधन नहीं कर सकते केवल स्वयं निर्वाण लाभ कर सकते हैं, वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं।

अग्रश्रावक—भगवान् बुद्ध के अग्रगामी शिष्य।

अनुशय—चित्त-मल, चित्त-दोष।

आश्रव—चित्त-मल (रोग-द्वेष-मोह)

आत्म या आत्मा—लौकिक अर्थ-'अहं' या 'अपनापन'—मैं और मेरे का भाव। परमार्थिक अर्थ—नित्य शाश्वत वस्तु। बुद्ध की दृष्टि में 'अहं' अथवा 'अपनापन'—मैं और मेरे का भाव—व्यवहारिक मात्र है, परमार्थिक सत्य नहीं है, और नित्य शाश्वत आत्मा को वे मानते नहीं थे।

आयतन—निवास, इन्द्रिय और विषय, बड़ा, विस्तार।

उपादान—संसार की ओर आसक्ति (भोग ग्रहण की आसक्ति)

उपोसथ—व्रत, उपवास। बौद्ध सद्गृहस्थ लोग अमावस्या और

पूर्णिमा को अष्टशील का व्रत लेते हैं। इसीलिए अष्टशील का नाम उपोसथ शील भी है।

चक्रवाल—ब्रह्मांड का घेरा।

चैत्य—चौरा, समाधि-स्थान, देवस्थान।

त्रिविध प्रहाण—प्रहाण का अर्थ है नाश यह तीन प्रकार का है।

१—तदंग प्रहाण—सम्पूर्ण दुःख का नाश न होकर उसके किसी-किसी भाग या सीमा तक के नाश होने को कहते हैं। यह शील के द्वारा होता है।

२—विष्कम्भन प्रहाण—सम्पूर्ण दुःखों का नाश तो होता है किन्तु उसके मूल का नाश नहीं होता। इससे दुःख फिर से उठ खड़ा होता है। यह समाधि के द्वारा प्राप्त होता है।

३—समुच्छेद प्रहाण—दुःख का अपने मूल सहित नाश हो जाना—दुःख का अत्यन्ताभाव। इसमें फिर दुःख का अभ्युत्थान कभी नहीं होता। यह प्रज्ञा के द्वारा होता है।

देवता और देव लोक—बौद्ध शास्त्रों में अनेक देवताओं और मार का वर्णन आता है। इस पिंड और ब्रह्मांड की रचना के भीतर गुप्त और प्रकट अनंत शक्तियाँ काम कर रही हैं। इन शक्तियों को ऋद्धि कहते हैं और इन ऋद्धियों के प्राप्त करने वालों को ऋद्धिमंत या देवता कहते हैं, इन ऋद्धियों में तारतम्य है और इनके भिन्न-भिन्न केन्द्र हैं। बौद्ध शास्त्रों में इस ब्रह्माण्ड की कुल रचनाओं को ३१ भुवनों, भूमियों या तीन लोकों में विभक्त किया गया है। विशेष-विशेष कर्म अर्थात् दान, शील और भावना के पुण्यानुष्ठान से मनुष्य उन भुवनों या लोकों को प्राप्त करता है।

इन ३१ भुवनों या लोकों में से मनुष्य और तिर्यक को छोड़ कर जितने सत्व या जीवगण हैं वे औपपत्तिक कहलाते हैं। औपपत्तिक सत्व उनको कहते हैं जो माता की कुक्षि से जन्म नहीं लेते, वरन् जिस आकृति और जिस अवस्था में उन्हें आविर्भूत होना होता है,

उसमें अंग प्रत्यंग सहित उतने ही बड़े आविर्भूत हो जाते हैं। विरुद्ध इसके मनुष्य और तिर्यक लोगों के सत्व माता की कुक्षि या अपने उपादानों से उत्पन्न होकर क्रमशः बड़े होते हैं।

आजकल अनेक देववाद के सिद्धान्त को भद्दा और एक ईश्वर-वाद के सिद्धान्त को बहुत उत्तम समझा जाता है किन्तु विचार दृष्टि से देखने पर एक ईश्वरवाद की अपेक्षा अनेक देववाद अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इस सम्पूर्ण विश्व की रचना में अनन्त शक्तियों और उन शक्तियों के भिन्न भिन्न केंद्र या लोक हैं।

मनुष्य अपने में देवत्व व ब्रह्मत्व का विकास करके देव लोकों और ब्रह्मलोकों को प्राप्त होता है और वहाँ के दिव्य भोगों को अमित काल तक भोगता है किन्तु इस प्रकार दिव्य भोगों और सुदीर्घ आयु प्राप्त करके भी जन्म-मरण के चक्र से नहीं छूटता। जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए निर्वाण की आवश्यकता होती है। इसीलिए निर्वाण पद को सर्वोपरि अवस्था वर्णन किया गया है।

परलोक और अदृष्ट प्राणियों की सत्ता के अस्तित्व मानने में कुछ लोग आनाकानी करते हैं किन्तु हमारी इन्द्रियों के अतीत का संसार अत्यन्त विस्तृत है। जितना कुछ हमारे समक्ष गोचर हो रहा है, उसकी अपेक्षा समस्त सत्ता अनन्त और असीम है। उसको जानने के लिए हमको सम्यक् प्रज्ञा के विकास करने की बड़ी आवश्यकता है।

ऊपर जिन लोकों या भुवनों का वर्णन किया गया है उनको स्पष्ट रूप से समझने के लिए अगले पृष्ठ में एक नक़शा दिया गया है।

३१ भुवनों या तीन लोकों का क्रम इस प्रकार है

लोक	ध्यान की भूमियाँ
४ अरूप ब्रह्मलोक या निराकार ब्रह्मलोक नैवसज्ञानासंज्ञायतन लोक आकिंचन्यायतन लोक विज्ञानानन्त्यायतन लोक आकाशानन्त्यायतन लोक	४ अरूप ब्रह्म लोक के ध्यान की भूमियाँ
१६ रूप ब्रह्मलोक या साकार ब्रह्मलोक अकनिष्ठलोक सुदर्शिन लोक सुदर्शन लोक अताप लोक अबृह लोक असंज्ञासत्व लोक बृहत्फल लोक	रूप ब्रह्म लोक के चौथे ध्यान की भूमियाँ
शुभाकीर्ण लोक, अप्रमाणशुभ लोक, परीत्तशुभ लोक,	रूप ब्रह्मलोक के तीसरे ध्यान की भूमियाँ
आभास्वर लोक, अप्रमाणाभा लोक, परित्ताभा लोक,	रूप ब्रह्मलोक के दूसरे ध्यान की भूमियाँ
महाब्रह्म लोक, ब्रह्मपुरोहित लोक, ब्रह्मपार्षद्य लोक,	रूप ब्रह्मलोक के पहले ध्यान की भूमियाँ

७ काम सुगति लोक	११ काम लोक परनिर्मितवसवर्ति लोक निर्माणरतिलोक दूषित लोक याम लोक त्रयतिंस लोक चतुर्महाराजिक लोक	६ देव लोक वा, स्वर्ग
	मनुष्य लोक	
४ काम दुर्गति लोक	तिर्यक लोक असुर लोक प्रेत लोक नरक लोक	४ अपाय लोक

धातु—पदार्थ, तत्व ।

निरोध—विनाश, मिटना, बंद होना ।

निरोध-समापत्ति—चित की सर्वोपरि एकाग्रता जिसमें सब प्रकार के क्लेश और चित्तमल मिट जाते हैं ।

पंच महादान या पंच महात्याग—सत्य और न्याय के लिए स्त्री, पुत्र, धन, धाम, और शरीर तक भी दे देना पड़े तो सहर्ष दे देना ।

परित्राण—रक्षा ।

पारमिता—पूर्णता । पारमिता १० हैं:—

दान पारमिता, शील पारमिता, निष्काम पारमिता, प्रज्ञा पारमिता, वीर्य पारमिता, क्षांति पारमिता, सत्य पारमिता, अधिष्ठान पारमिता, मैत्री पारमिता और उपेक्षा पारमिता ।

(१) दान पारमिता—दान की पूर्णता । अर्थात् सत्य और न्याय के लिये सर्वस्व दे देना । आवश्यकता पड़े तो अपने जीवन तक को भी सहर्ष देना ।

(२) शील पारमिता—शील की पूर्णता । अर्थात् मन, वचन और काय को पूर्णतया पाप कर्मों से परिशुद्ध रखना । सदाचार के मार्ग से जरा न हटना ।

(३) निष्काम पारमिता—भोग इच्छाओं का परित्याग । परोपकार के लिये स्वार्थ त्याग की पूर्णता ।

(४) प्रज्ञा पारमिता—ऊँच-नीच जहाँ से भी मिल सके ज्ञान का सम्पादन करना, जब तक की ज्ञान की पूर्णता प्राप्त न हो ।

(५) वीर्य पारमिता—पराक्रम की पूर्णता । अविचल साहस । अंत तक उद्योग करना जब तक कि कार्य में सफलता न हो ।

(६) क्षांति पारमिता—क्षमा, धैर्य और सहन-शीलता में परिपूर्णता लाभ करना ।

(७) सत्य पारमिता —सत्य में पूर्णता लाभ करना । कभी भी मन, वाणी और काया से, सत्य से, विचलित न होना ।

(८) अधिष्ठान पारमिता—शिव-संकल्प की पूर्णता। अर्थात् अपने कल्याणकर सद्‌संकल्प में इतना दृढ़ हो कि कभी भी उससे विचलित न हो।

(९) मैत्री पारमिता—अतुल प्रेम। अर्थात् माता जैसे अपने एकलौते पुत्र को प्यार करती है, वैसे ही सब प्राणियों से अतुल प्रेम का बर्ताव करना।

१०) उपेक्षा पारमिता—तटस्थता का भाव अर्थात् शत्रु-मित्र, सुख-दुःख आदि में सम-भाव।

इन दसों पारमिताओं को बिना पूर्ण किये कोई बुद्ध नहीं हो सकता।

पुद्‌गल—व्यक्ति।

बुद्ध, श्रावक-संघ – बुद्ध-शिष्य-गण—बुद्ध शिष्य गण मार्ग और फल भेद से ४ जोड़ियों या ८ व्यक्तियों में विभक्त किये गये हैं। जैसे:—(१) स्रोत आपत्ति मार्ग लाभी। (२) स्रोत आपत्ति फल लाभी। (३) सकृदागामी मार्ग लाभी (४) सकृदागामी फल लाभी। (५) अनागामी मार्ग लाभी। (६) अनागामी फल लाभी। (७) अर्हत् मार्ग लाभी। (८) अर्हत् फल लाभी। अर्थात् स्रोत आपत्ति जो निर्वाण की ओर जाने वाली उन्नति की धार में पड़ गया है, अब उसका पतन नहीं होगा। सात जन्म के भीतर वह अवश्य निर्वाण प्राप्त कर लेगा। सकृदागामी जिसका संसार में केवल एक दफ़े जन्म होगा, बाद निर्वाण को प्राप्त होगा। अनागामी जो इस मृत्यु लोक में जन्म नहीं ग्रहण करेगा। किन्तु अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में उत्पन्न होकर वहां से ही अपने पुण्यों का फल भोगकर निर्वाण में चला जायगा। अर्हत जो इसी जन्म में इसी शरीर से निर्वाण प्राप्त करते हैं। बौद्धधर्म में आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त लोगों के यह चार विभाग हैं।

बुद्ध के दस बलः—

१—बुद्ध स्थान को स्थान के तौर पर, और अस्थान को अस्थान के तौर पर यथार्थतः जानते हैं।

२—बुद्ध अतीत, वर्तमान और भविष्यत् के किये कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु पूर्वक ठीक से जानते हैं।

३—बुद्ध सर्वत्रगामिनी प्रतिपद (मार्ग, ज्ञान) को ठीक से जानते हैं।

४—बुद्ध अनेक धातु (ब्रह्माण्ड) और नाना लोकों को ठीक से जानते हैं।

५—बुद्ध नाना अभिमुक्ति (=स्वभाव) वाले सत्वों (=प्राणियों) को ठीक से जानते हैं।

६—बुद्ध दूसरे सत्वों की इन्द्रियों के परत्व-अपरत्व (=प्रबलता, दुर्बलता) को ठीक से जानते हैं।

७—बुद्ध ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति के सक्लेश (=मल), व्यवदान (=निर्मल करण) और उत्थान को ठीक से जानते हैं।

८—बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की बात को जानते हैं।

९—बुद्ध अपने विशुद्ध दिव्य-चक्षु से प्राणियों को उत्पन्न होते, मरते और स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होते देखते हैं।

१०—बुद्ध आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा की विमुक्ति को साक्षात् कर लेते हैं।

बुद्ध के चार वैशारद्य—(=विशारदता) अर्थात् त्रुटि रहित अपूर्व चार पारदर्शिता—यथाः—

१—भगवान् बुद्ध सम्यक सम्बुद्ध थे, वे अपने सम्यक् ज्ञान के द्वारा यथा तथ्य सब पदार्थों को जानते थे, यह उनका सम्यक् ज्ञान सम्बन्धी वैशारद्य है।

२—भगवान् बुद्ध क्षीणास्रव अर्हत् थे, उनमें किसी प्रकार का आस्रव अर्थात् चित्तमल या पाप नहीं था। वे निर्मल और पाप रहित थे। यह उनका सम्यक् चरित्र सम्बन्धी वैशारद्य है।

३—भगवान् बुद्ध ने अन्तराय-धर्मों का अर्थात् उन्नति पथ के विघ्नकारी धर्मों का यथा तथ्य उपदेश भलीभाँति दिया है, उस पर चलने से किसी की कभी गिरावट नहीं हो सकती। यह उनका सम्यक् दर्शन (= सिद्धान्त) सम्बन्धी वैशारद्य है।

४—भगवान् बुद्ध ने दुःख क्षय या निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बहुत निपुणता के साथ बताया है, उस पर चलने से दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति होती है। यह भी उनके सम्यक् दर्शन (= सिद्धान्त) सम्बन्धी वैशारद्य है।

बुद्ध के अठारह गुणः—

१—अतीत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
२—वर्तमान काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
३—अनागत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
४—बुद्ध के सभी कायिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
५—बुद्ध के सभी वाचसिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
६—बुद्ध के सभी मानसिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
७—बुद्ध के सभी छन्द (इच्छा) की कभी हानि नहीं होती।
८—बुद्ध के धर्म-देशना करने में कभी कोई हानि नहीं होती।
९—बुद्ध के वीर्य (= उत्साह, पराक्रम) में कभी कोई हानि नहीं होती।
१०—बुद्ध के समाधि में कभी कोई हानि नहीं होती।
११—बुद्ध की प्रज्ञा में कभी कोई हानि नहीं होती।
१२—बुद्ध की विमुक्ति में कभी कोई हानि नहीं होती।
१३—बुद्ध 'दवा' अर्थात् हँसी-ठट्ठा नहीं करते।
१४—बुद्ध में 'रवा' अर्थात् गिरावट नहीं होती।
१५—बुद्ध का ज्ञान 'अप्फुट' अर्थात् अनस्पष्ट नहीं है।
१६—बुद्ध में 'वेगादियितत्त' अर्थात् उतावलापन नहीं है।
१७—बुद्ध 'अव्यावटमनो' अर्थात् उद्योग-रहित नहीं हैं।

१८—बुद्ध में 'अप्पखानउपेक्खा' अर्थात् विचार-रहित उपेक्षा नहीं होती।

बुद्ध महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त होते हैं। यथाः—

१—सुप्रतिष्ठित-पाद=जिसका पैर ज़मीन पर बराबर बैठता हो।

२—नीचे पैर के तलवे में सर्वाकार-परिपूर्ण, नाभि-नेमि-युक्त (=पुट्ठी-युक्त) सहस्र अरोंवाला चक्र होता है।

३—आयतपार्ष्णि=चौड़ी घुट्ठी वाला।

४—दीर्घ-अंगुल।

५—मृदु-तरुण-हस्त-पद।

६—जाल-हस्त-पाद=अंगुलियाँ सटी हुई।

७—उस्संखपाद=गुल्फ जिस पाद में ऊपर अवस्थित हों।

८—एड़ी-जंघ=मृग जैसा पेंडुलीवाला।

९—बिना झुके, खड़े ही दोनों घुटनों को अपने हाथ के तलवों से छू जाता हो (आजानुबाहु)।

१०—कोषाच्छादित पुरुष-इन्द्रिय।

११—सुवर्ण वर्ण=काँचन समान त्वचा।

१२—सूक्ष्म-छवि=(अति सूक्ष्म ऊपरी चमड़ा) जिससे काया पर मैल-धूल नहीं चिपटती।

१३—एकैक लोम=एक-एक रोम कूप में एक-एक रोम हो।

१४—ऊर्ध्वाग्र लोम=प्रदक्षिणा (=बायें से दाहिनी ओर) से कुंडलित लोमों के सिरे ऊपर को उठे हों।

१५—ब्रह्म ऋजु-गात्र=लम्बे अकुटिल शरीर।

१६—सप्त-उत्सद=शरीर के सातों अंगों में पूर्ण आकार।

१७—सिंह-पूर्वार्द्ध-काय=जिसकी छाती आदि शरीर का ऊपरी भाग सिंह की भाँति विशाल हो।

१८—चितान्तरांस=जिसका दोनों कंधो का बिचला भाग चितपूर्ण हो।

१९—न्यग्रोध-परिमंडल=जितनी शरीर की ऊँचाई, उतना व्याम और जितना व्याम उतनी ही शरीर की ऊँचाई।

२०—समवर्त-स्कंध=समान परिमाण के कन्धों वाला।

२१—रसग्ग-सग्गी=सुन्दर शिराओं वाला।

२२—सिंह-हनु=सिंह समान पूर्ण ठोड़ी वाला।

२३—चव्वालिस दन्त।

२४—समदन्त।

२५—अ-विवर-दन्त=दाँतों के बीच कोई छेद न हो।

२६—सु-शुक्ल-दाढ़=खूब शुभ्र दाढ़ वाला।

२७—प्रभूत जिह्वा=लम्बी जीभ वाला।

२८—ब्रह्म-स्वर=करविंक पक्षी के-से स्वर वाला।

२९—अभिनील-नेत्र=अलसी के पुष्प जैसी नीली आँखों वाला।

३०—गो-पक्ष्म=गाय जैसी पलकवाला।

३१—भौंहों के बीच में श्वेत कोमल कपास-सी ऊर्णा (=रोमराजी)।

३२—उष्णीषशीर्षा=पगड़ी की तरह उभड़ा हुआ सिर के ऊपर मांस पिंड।

बुद्ध की व्याम-प्रभा—व्याम प्रभा—दोनों हाथों को दोनों तरफ़ फैलाने की दूरी को व्याम कहते हैं। एक व्याम के विस्तार में बुद्ध के चारों तरफ़ प्रकाश-मंडल-सा होता है; जिसे तेजो मंडल और ओरा भी कहते हैं।

बोधि पाक्षिक धर्म—३७ हैं। जिसके नाम ये हैं:—

चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, पांच इन्द्रियाँ, पांच बल, सात संबोध्यंग और आठ आर्य-मार्ग, ये सब मिलकर सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्म हैं।

कायानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, वेदानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, चित्तानुदर्शन स्मृत्युपस्थान और धर्मानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, ये चार स्मृत्युपस्थान हैं।

अनुत्पन्न पुण्य कर्मों का उत्पन्न करना, उत्पन्न पुण्य कर्मों की वृद्धि करना, उत्पन्न हुए पाप कर्मों का नाश करना और अनुत्पन्न पाप कर्मों को न उत्पन्न होने देना ये चार प्रकार के सम्यक् प्रहाण हैं।

छन्द ऋद्धि (शुभेच्छा) का उत्पन्न करना, वीर्य ऋद्धि (शुभोत्साह) का उत्पन्न करना, चित्त ऋद्धि (प्रशान्त चित्त) का उत्पन्न करना और मीमांसा ऋद्धि (स्थिर संकल्प) का उत्पन्न करना ये चार ऋद्धिपाद हैं।

श्रद्धा इन्द्रिय, वीर्य इन्द्रिय, स्मृति इन्द्रिय, समाधि इन्द्रिय और प्रज्ञा इन्द्रिय, ये पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ हैं।

श्रद्धाबल, वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल और प्रज्ञाबल ये पाँच प्रकार के बल हैं।

स्मृति-सम्बोध्यंग, धर्म-विवेचन सम्बोध्यंग, वीर्य सम्बोध्यंग, प्रीति सम्बोध्यंग, प्रश्रब्धि (प्रशान्त) सम्बोध्यंग, समाधि सम्बोध्यंग और उपेक्षा सम्बोध्यंग, ये सात प्रकार के सम्बोध्यंग हैं।

सम्यक् दृष्टि. सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ये आर्य अष्टांगिक मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ आठ अंगों वाले मार्ग हैं।

बोधिसत्व—बुद्ध होने के लिए या बुद्धत्व लाभ करने के लिए प्रयत्न शील पुरुष।

जो लोग निर्वाण विद्या को सर्वसाधारण में वितरण करने के लिए करुणावश होकर बहुत जन्मों से परमपुनीत लोकोत्तरीय प्रतिभा और प्रज्ञा को प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं उन्हें बोधि-सत्व कहते हैं।

भवाग्र से अवीचि तक—नैवसंज्ञानासंज्ञायतन लोक से अवीचि नरक तक जितने भी प्राणी हैं वे सब सुखी हों, ऐसी बौद्धों की कामना है।

भिक्षु—बौद्ध-सन्यासी, साधु।

महाश्रावक—भगवान् बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्य।

मिथ्या दृष्टि—अर्थात् सम्यक् दृष्टि से विपरीत। मिथ्या-धारणा।

दीर्घ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में तथा पोट्ठपाद सुत्त में ६२ प्रकार की मिथ्या दृष्टियों का उल्लेख मिलता है परन्तु उनमें मुख्य ३ मिथ्या दृष्टियाँ हैं; जिनका (अंगुत्तर निकाय, तिकनिपात, महावग्ग में) भगवान् बुद्ध ने निम्नोक्त प्रकार से वर्णन किया है:—

भगवान् बुद्ध—भिक्षुओ! ये तीन 'तीर्थायतन' अर्थात् मिथ्या दृष्टि हैं जिन्हें मानने से परिणामतः मनुष्य अकर्मवादी बनता है। वे कौन से तीन हैं? (१) संसार में ऐसे भी श्रमण ब्राह्मण होते हैं जिसका ऐसा वाद और ऐसी दृष्टि होती है कि मनुष्य सुख-दुःख या इनसे भिन्न जो कुछ भी अनुभव करता है उन सबका कारण पूर्वकृत कर्म है। (२) बहुत से ऐसे श्रमण-ब्राह्मण भी होते हैं कि जिनका वाद और दृष्टि ऐसी होती है कि मनुष्य जो कुछ सुख-दुःख या इनसे भिन्न अनुभव करता है उन सबका कारण ईश्वर है। (३) बहुत से ऐसे श्रमण-ब्राह्मण भी होते हैं जिनका वाद और दृष्टि ऐसी होती है कि मनुष्य जो कुछ सुख दुःख आदि का अनुभव करता है उन सबका कोई कारण नहीं अर्थात् वे अहेतु अप्रत्यय है।

भिक्षुओं! पूर्वकृत हेतुवादियों से मैं ऐसा प्रश्न करता हूँ। क्या आप लोग ऐसा वाद और ऐसी दृष्टि रखते हैं कि मनुष्य को सुख दुःखादि सब कुछ पूर्वकृत कर्म से ही होते हैं? जब वे कहते हैं—"हाँ।" तब हम उनसे पूछते हैं कि यदि मनुष्य के सुख-दुःखादि जितने भी अनुभव हैं वे सब पूर्वकृत कर्म के कारण हैं तो इस जन्म में प्राणी हिंसा, चोरी, व्यभिचार-मद्यपान-जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ करना, क्रोध करना, नास्तिकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म हैं, वे सब पूर्वकृत कर्म के कारण ही होंगे। तब इन सब पाप कर्मों का जिम्मेदार मनुष्य को न होना चाहिये।

भिक्षुओ ! पूर्वकृत कर्म को ही सर्वस्व कारण मानने वाला के लिये कुछ कर्म करने को इच्छा नहीं हो सकती और न कुछ प्रयत्न और परिश्रम करने की आवश्यकता हो सकती है। कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म का भी कुछ निश्चय नहीं हो सकता। इस प्रकार किसी निश्चित कर्म पथ के अभाव के कारण वे हत्-स्मृति वाले होंगे। इन अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता। भिक्षुओ ! इन पर्वकृत हेतुवालों के लिये यह हमारा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खंडन) है।

भिक्षुओ ! ईश्वर निर्माणवादियों से भी हम यही पूछते हैं कि मनुष्य के सुख-दुःखादि जितने भी अनुभव हैं वे सब ईश्वर-कृत हैं तो प्राणि-हिंसा, चोरी, व्यभिचार-मद्यपान-जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ करना, क्रोध करना, नास्तकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म हैं वे सब ईश्वर कृत ही होंगे। तब इन सब पाप कर्मों का जिम्मेदार मनुष्य को न होना चाहिये। भिक्षुओ ! सुख-दुःखादि सम्पूर्ण पदार्थों का ईश्वर निर्माणवाद का अनुगमन करनेवालों को कुछ कर्म करने की इच्छा नहीं हो सकती और न कुछ प्रयत्न और परिश्रम ही करने की आवश्यकता हो सकती है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कर्म का कुछ निश्चय भी नहीं हो सकता। इस प्रकार किसी निश्चित कर्म पथ के अभाव के कारण हतस्मृति वाले होंगे। इन अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता। भिक्षुओ ! इन ईश्वर कृत हेतु वालों के लिये यह हमारा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खंडन) है।

भिक्षुओ ! मनुष्य के यावत् सुख-दुःखादि अनुभवों का कोई कारण न माननेवाले अहेतु अप्रत्यय वादियों से हम ऐसा पूछते हैं कि इस संसार में प्राणि-हिंसा, चोरी व्यभिचार-मद्यपान, जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ

करना, क्रोध करना, नास्तिकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म है वे सब बिना कारण ही होते हैं उनका कोई पूर्व हेतु नहीं है।

भिक्षुओ! अहेतुवाद को अनुगमन करने वालों को कर्म करने की तथा व्यायाम करने की कोई इच्छा और आवश्यकता नहीं हो सकती। कर्तव्य और अकर्तव्त का कोई निश्चय भी नहीं हो सकता। ऐसे अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता। भिक्षुओ इन अहेतुवादियों के लिए यह हमारा तीसरा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खंडन) है।

विकाल भोजन—मध्याह्नोत्तर का भोजन विकाल भोजन कहलाता है।

विचिकित्सा—बुद्ध, धर्म, संघ इन तीनों के महत्व में सन्देह करना।

विनिपातिक—पाप योनि या नारकीय जीव।

विहार—बौद्ध भिक्षुओं के रहने का स्थान (मठ), बुद्ध-मंदिर।

व्युपशम—विनाश, निरोध।

शीलव्रत—बुद्ध के बताए हुए आर्य-अष्टाँगिक-मार्ग के अतिरिक्त अन्य यज्ञ-योग पूजा-पाठ, व्रत-उपवास और कठिन तप आदिकों के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति में विश्वास करना।

सत्काय-दृष्टि—इस नाम रूपात्मक पंच-स्कंध या जगत को सत्य और स्थायी समझना अथवा इससे भिन्न किसी शाश्वत या नित्य वस्तु का विश्वास करना।

सम्यक-दृष्टि—दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध और दुःख निरोध का मार्ग। इन चारों आर्य सत्यों के साक्षात्कार को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

स्थविर—भिक्षु होने के १० साल बाद स्थविर और २० साल बाद महास्थविर होता है। इसी का पाली रूप थेरो और महाथेरो है।